श्रीः

मनोहरकाव्यमाला

सनातनधर्मकालेजस्य
संस्कृतेतिहासाध्यापकेन
कैलाशनाथ एम. ए.
इत्यनेन संगृहीता
प्रकाशिता च

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—
मोतीलाल बनारसीदास
अध्यक्ष—पंजाब संस्कृत पुस्तकालय
सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर।

सन् १९२९. मूल्यम् २)

प्रकाशक—
प्रो. कैलाशनाथ भटनागर एम. ए.
मोहनलाल रोड लाहौर ।

मुद्रक—
दुर्गादास प्रभाकर
मैनेजर बम्बई संस्कृत प्रेस
सैदमिट्ठा बाज़ार लाहौर ।



स्वर्गीय

श्रीवर रघुवरदयालुः एम. ए., एम. ओ. एल., शास्त्री ।

॥ श्रीः ॥

समर्पितमिदं

श्रीवर--रघुवरदयालोः

एम. ए., एम. ओ. एल., शास्त्रिणः

सनातन-धर्म-कॉलेज-भूतपूर्व-प्रिन्सीपलस्य

शास्त्रज्ञस्य वेदवेदाङ्गपारगस्य

क्षमाशीलादिगुणवारिधेः

पुण्य-स्मृतौ विनी-

तेन शिष्येण

भूमिका।

कुछ गत-वर्षों से रामायण प्राज्ञ-श्रेणी में पाठ्यपुस्तक रूप से नियत की गई है। रामायण के विरुद्ध कोई पुरुष कुछ आक्षेप नहीं कर सकता। कथा इतनी रोचक और शिक्षाप्रद है कि इसके कुछ अंश—जो कि वास्तव में रत्न के समान दीप्तिमान् हैं, और सम्पूर्ण-संस्कृत-साहित्य के सार हैं—छोटे बालकों को अवश्य पढ़ाए जाने चाहिएं क्यों कि इन बालकों के आचरण अभी बनाने होते हैं, और जो कि अभी कुछ शिक्षाप्रद विषयों की आवश्यकता रखते हैं जिनसे कि उनके आचार-व्यवहार उच्च बन सके और उनके जीवन आदर्शरूप बनें। रामायण हमें संस्कृत काव्य का सब से प्रथम उदाहरण देती है। परन्तु एक प्रश्न उठता है। क्या शेष संस्कृत-साहित्य में ऐसे अन्य विषय अनुपलब्ध हैं जो कि केवल रामायण ही पढ़ाई जाए? नहीं, कदापि नहीं! अतः अन्याऽन्य स्थानों से भी कुछ रोचक और शिक्षा-प्रद विषयों का संग्रह करने के लिए प्रयत्न किया गया है। यह ध्यान रखा गया है कि कोई विषय किसी मत के विरुद्ध न हो। प्रत्येक विषय में कथा के अनुसार भिन्न भिन्न भाग कर दिए गए हैं और उसी प्रकार नाम भी दिए गए हैं।

इस पुस्तक में ये विषय हैं:—

१. रामवनगमनम् (पृष्ठ १—२६)—यह विषय वाल्मीकीय-रामायण से कुछ ही संक्षिप्त किया गया है। यह हमें एक अद्भुत-रोचक ढंग से इस प्रकार शिक्षा देता है:—(१) पितृभक्ति (राम का वन को जाना)

(२) वात्सल्य-प्रेम (कौशल्या और दशरथ का विलाप)

(३) पतिव्रता-धर्म (सीता का वन को जाना)

(४) भ्रातृ-प्रेम (लक्ष्मण का वन को जाना)

(५) प्रजा-प्रेम इत्यादि (राम का वनवास सुन कर प्रजा का दुःखित होना)

२. सीता-हरणम्—(पृष्ठ २७—१०६) यह विषय भी वाल्मीकीय-रामायण से कुछ ही संक्षिप्त किया गया है। यह हमें इस प्रकार शिक्षा देता है:-

(१) दारा शब्द का यथार्थत्व (लक्ष्मण प्रति सीता की निर्भर्त्सना)

(२) आत्म-त्याग (सीता की रक्षा करते हुए जटायु का रावण के हाथों मारा जाना)

(३) पति का स्त्री के लिए प्रेम (राम का विलाप)

(४) प्राचीन सभ्यता का उत्कर्ष (यथा पुष्पविमानादि) इत्यादि।

३. हरिश्चन्द्रः—(पृष्ठ ११०—१४८)—यह एक उस राजा की कथा है जिसने सब कुछ त्याग कर दिया। जिसने कि राजपाट ही नहीं, अपनी स्त्री और पुत्र और अपने आप को भी बेच दिया और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दिखाई। यह कथा एक प्रसिद्ध कथा है।

यह कथा अत्यन्त शोक-प्रद तथैव शिक्षा-प्रद भी है। वास्तव में सत्य बोलने का स्वभाव ऐसी ऐसी कथाओं से निर्मित हो सकता है। सत्यवादी पुरुष आजकल दुष्प्राप्य हैं परन्तु आवश्यकता अत्यन्त है। यह तो शिक्षा हुई हरिश्चन्द्र के जीवन से। क्या शैव्या का जीवन कम श्लाघनीय है? वह भी सत्य-व्रत के लिए उसे उत्तेजना देती थी। दक्षिणा का ऋण चुकाने के लिए उसने अपने पति से हठ किया कि मुझे बेच दो और पति के कारण राजमहिषी के स्थान उसने एक साधारण दासी बनना स्वीकार किया। धन्य हैं ऐसी नारियें और पुरुष!

४. शकुन्तलोपाख्यानम्—(पृष्ठ १४८—१७५)—यह कथा पद्मपुराण से उद्धृत की गई है। कालिदास के नाटक अभिज्ञान--शकुन्तला ने इस कथा को और भी प्रसिद्ध किया है। यह कथा महाभारत में भी मिलती है परन्तु यह कालिदास की कथा से कुछ भिन्न है। अत एव महाभारत की कथा छोड़ दी गई है और पद्मपुराण की कथा लिखी गई है। महाभारतीय कथा इससे लगभग दुगनी है।

यह कथा अद्भुत रोचक और आकर्षण-शक्ति-युक्त है। यह कथा शकुन्तला का अपने पति दुष्यन्त के प्रति निरन्तर, सुदृढ़, अक्षीण प्रेम दिखाती है यद्यपि वह दुष्यन्त से अपमानित और तिरस्कृत भी की गई थी जब कि महर्षि कण्व ने इसे दुष्यन्त के पास भेजा था। निश्चय से यह निरादर दुर्वासा के शाप के कारण हुआ था। दुष्यन्त इस में निर्दोष था। जब शाप का अन्त होगया तो हम देखते हैं कि दुष्यन्त को भी अत्यन्त खेद हुआ।

५. द्रौपदी-चीर-हरणम्—(पृष्ठ १७६—२०३)—यह विषय महाभारत से उद्धृत किया गया है। यह महाभारत के युद्ध के मूल-कारणों में से एक मूल-कारण था। यह युद्ध यथार्थ में द्रौपदी के निरादर और अपमान का, जो कि सभा में द्यूत-क्रीड़ा के अनन्तर किया गया था, बदला था।

६. सावित्री-सत्यवान्—(पृष्ठ २०३—२२२)—यह कथा महाभारत से उद्धृत की गई है। यह

"भवितव्यता खलु बलवती" के विरुद्ध है और

"दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या" के समर्थन में है।

इस कथा से हमें यह ज्ञात होता है कि सावित्री ने किस प्रकार अपने पति सत्यवान् को, जिसकी आयु यम ने समाप्त कर दी थी, पुनर्जीवित कर लिया।

७. यक्ष-युधिष्ठिर-संवादः—(पृष्ठ २२२—२३२)—यह संवाद महाभारत से उद्धृत किया गया है। यह संवाद अत्यन्त शिक्षाप्रद है। दो एक उदाहरण दिए जाते हैं:—

यक्ष उवाच—

धन्यानामुत्तमं किंस्विद्धनानां स्यात्किमुत्तमम् ।
लाभानामुत्तमं किं स्यात्सुखानां स्यात्किमुत्तमम् ॥

युधिष्ठिर उवाच—

धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम् ।
लाभानां श्रेय आरोग्यं सुखानां तृप्तिरुत्तमा ॥

पुनरपि—

'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः"

इत्यादि अत्यन्त सुन्दर और अमूल्य भाव हैं । मैं इस विषय को अब बढ़ाना नहीं चाहता । पुस्तक पाठकों के सामने है । वे इसका गुण स्वयं देख लेंगे—

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा ॥

मैं मिस्टर ए. सी. वुलनर एम. ए., सी. आई. ई., एफ. ए. एस. बी., प्रिन्सीपल ओरियण्टल कौलेज लाहौर और वाईस-चान्सलर पञ्जाब युनिवर्सीटी का अत्यन्त अनुगृहीत हूं जिन्हों ने कि कई एक अत्यन्त गुणकारी मन्त्रणाएं दीं । मैं महामहोपाध्याय पंडित गणेशदत्त जी शास्त्री का भी अत्यन्त अनुगृहीत हूं जिन्हों ने मुझे इस संग्रह में विशेष सहायता दी है । मैं पं० परमेश्वरानन्द जी, पं० हीरानन्द जी, और पं० मोहन देव जी का भी विशेष कृतज्ञ हूं।

अन्त में मैं विद्यार्थियों को यह बताना चाहता हूं कि यह भूमिका उन के लिए ही हिन्दी में लिखी है । यह देखा है कि प्रायः विद्यार्थी भूमिका नहीं पढ़ते । अत एव इनका इधर ध्यानाकर्षण करने के लिए यह भूमिका हिन्दी में लिखी गई है । आशा है कि पाठकगण अब विशेष लाभ उठाएंगे । इस भूमिका के दृष्टिगोचर होने से इन्हें यह ज्ञात होगा कि प्रत्येक विषय में क्या क्या विशेषताएं हैं और उनसे हम क्या क्या शिक्षाएं ग्रहण कर सकते हैं ।

अब हम पाठकों से क्षमा मांगते हैं । स्वधर्मपत्नी के रोगग्रस्त होने के कारण जल-वायु परिवर्तन कराने के लिए उन्हें बाहर भेज दिया गया था । पुस्तक इस लिए शीघ्र मुद्रण की गई थी कि मैं भी वहां जा सकूं । तब भी प्रूफ-संशोधन में विशेष ध्यान रखा गया था । सम्भव है कि कुछ अशुद्धिएं रह गई हों । पाठकगण क्षमा करेंगे । पुस्तक की छपाई व पत्रादि का प्रबन्ध उच्च-श्रेणी का किया गया है । पाठकगण स्वयं निरीक्षण कर लेंगे ।

लाहौर
१२—१०—२१

कैलाशनाथ एम. ए.

विषयानुक्रमणिका।

रामवनगमनम्

वनवासादेशः

स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे।
कैकेय्या सहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥
स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत्।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः ॥ २ ॥
रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम् ॥ ३ ॥
तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा रूपं भयावहम्।
रामोऽपि भयमापन्नः पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम् ॥ ४ ॥
इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसंतापकर्शितम्।
निःश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम् ॥ ५ ॥
ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिव सागरम्।
उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा ॥ ६ ॥
अचिन्त्यकल्पं नृपतेस्तं शोकमुपधारयन्।
बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि ॥ ७ ॥
चिन्तयामास चतुरो रामः पितृहिते रतः।
किंस्विदद्यैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति ॥ ८ ॥
अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति।
तस्य मामद्य संप्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते ॥ ९ ॥
स दीन इव शोकार्तो विषण्णवदनद्युतिः।
कैकेयीमभिवाद्यैव रामो वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥
कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद्येन मे पिता।
कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय ॥ ११ ॥

अप्रसन्नमनाः किं नु सदा मां प्रति वत्सलः ।
विषण्णवदनो दीनः सदा मां प्रतिभाषते ॥ १२ ॥
शारीरो मानसो वापि कच्चिदेनं न बाधते ।
संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥ १३ ॥
कच्चिन् न किंचिद् भरते कुमारे प्रियदर्शने ।
शत्रुघ्ने वा महासत्त्वे मातॄणां वा ममाशुभम् ॥ १४ ॥
अतोषयन्महाराजमकुर्वन् वा पितुर् वचः ।
मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ॥ १५ ॥
यतो मूलं नरः पश्येत् प्रादुर्भावमिहात्मनः ।
कथं तस्मिन्न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते ॥ १६ ॥
कच्चित्ते परुषं किंचिदभिमानात् पिता मम ।
उक्तो भवत्या रोषेण येनास्य लुलितं मनः ॥ १७ ॥
एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः ।
किंनिमित्तमपूर्वोऽयं विकारो मनुजाधिपे ॥ १८ ॥
एवमुक्ता तु कैकेयी राघवेण महात्मना ।
उवाचेदं सुनिर्लज्जा धृष्टमात्महितं वचः ॥ १९ ॥
न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किंचन ।
किंचिन् मनो गतं त्वस्य त्वद् भयान् नानुभाषते ॥ २० ॥
प्रियं त्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्तते ।
तदवश्यं त्वया कार्यं यदनेनाश्रुतं मम ॥ २१ ॥
एष मह्यं वरं दत्त्वा पुरा मामभिपूज्य च ।
स पश्चात् तप्यते राजा यथाऽन्यः प्राकृतस्तथा ॥ २२ ॥
अतिसृज्य ददानीति वरं मम विशांपतिः ।
स निरर्थं गत-जले सेतुं बन्धितुमिच्छति ॥ २३ ॥
धर्ममूलमिदं राम विदितं च सतामपि ।
तत्सत्यं न त्यजेद्राजा कुपितस्त्वत्कृते यथा ॥ २४ ॥

यदि तद्वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाशुभम् ।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम् ॥ २५ ॥
यदि त्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते ।
ततोऽहमभिधास्यामि न ह्येष त्वयि वक्ष्यति ॥ २६ ॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् ।
उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसन्निधौ ॥ २७ ॥
अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः ।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ॥ २८ ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥ २९ ॥
तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ ३० ॥
तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम् ।
उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम् ॥ ३१ ॥
"पुरा देवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव ।
रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे ॥ ३२ ॥
तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम् ।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ॥ ३३ ॥
यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि ।
आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ॥ ३४ ॥
सन्निदेशे पितुस्तिष्ठ यथानेन प्रतिश्रुतम् ।
त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ॥ ३५ ॥
भरतश्चाभिषिच्येत यदेतदभिषेचनम् ।
त्वदर्थे विहितं राज्ञा तेन सर्वेण राघव ॥ ३६ ॥
सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ।
अभिषेकमिदं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव ॥ ३७ ॥

भरतः कोसलपतेः प्रशास्तु वसुधामिमाम् ।
नानारत्नसमाकीर्णां सवाजिरथसंकुलाम् ॥ ३८ ॥
एतेन त्वां नरेन्द्रोऽयं कारुण्येन समाप्लुतः ।
शोकैः संक्लिष्टवदनो न शक्नोति निरीक्षितुम् ॥ ३९ ॥
एतत्कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन ।
सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम् ॥ ४० ॥"

इतीव तस्यां परुषं वदन्त्यां
न चैव रामः प्रविवेश शोकम् ।
प्रविव्यथे चापि महानुभावो
राजा च पुत्रव्यसनाभितप्तः ॥ ४१ ॥

तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम् ।
श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयीं चेदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥
एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः ।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ ४३ ॥
इदं तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं मां महीपतिः ।
नाभिनन्दति दुर्धर्षो यथापूर्वमरिन्दमः ॥ ४४ ॥
मन्युर्न च त्वया कार्यो देवि ब्रूमि तवाग्रतः ।
यास्यामि भव सुप्रीता वनं चीरजटाधरः ॥ ४५ ॥
हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च ।
नियुज्यमानो विस्रब्धः किं न कुर्यामहं प्रियम् ॥ ४६ ॥
अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहते मम ।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ ४७ ॥
अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च ।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरतायाप्रचोदितः ॥ ४८ ॥
किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः ।
तव च प्रियकामार्थं प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ ४९ ॥

तथाश्वासय ह्रीमन्तं किं न्विदं यन्महीपतिः ।
वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुञ्चति ॥ ५० ॥
गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ।
भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात् ॥ ५१ ॥
दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः ।
अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश ॥ ५२ ॥
सा हृष्टा तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकेयी ।
प्रस्थानं श्रद्दधाना सा त्वरयामास राघवम् ॥ ५३ ॥
एवं भवतु यास्यन्ति दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ।
भरतं मातुलकुलादिहावर्तयितुं नराः ॥ ५४ ॥
तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम् ।
राम तस्मादितः शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि ॥ ५५ ॥
व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते ।
नैतत् किंचिन् नरश्रेष्ठ मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥ ५६ ॥
यावत् त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरन् ।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा ॥ ५७ ॥
धिक् कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः ।
मूर्च्छितो न्यपतत् तस्मिन् पर्यंके हेमभूषिते ॥ ५८ ॥
रामोऽप्युत्थाप्य राजानं कैकेय्याभिप्रचोदितः ।
कशयेवाहतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः ॥ ५९ ॥
तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोदयम् ।
श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६० ॥
नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे ।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम् ॥ ६१ ॥
यत्तत्रभवतः किंचिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया ।
प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत् ॥ ६२ ॥

न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम् ।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ॥ ६३ ॥
अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम् ।
वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश ॥ ६४ ॥
न नूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान् ।
यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती ॥ ६५ ॥
यावन् मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम् ।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद्वनम् ॥ ६६ ॥
भरतः पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा ।
तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः ॥ ६७ ॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा भृशं दुःखगतः पिता ।
शोकादशक्नुवन्वक्तुं प्ररुरोद महास्वनम् ॥ ६८ ॥
वन्दित्वा चरणौ राज्ञो विसंज्ञस्य पितुस्तदा ।
कैकेय्याश्चाप्यनार्याया निष्पपात महाद्युतिः ॥ ६९ ॥
स रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणम् ।
निष्क्रम्यान्तः पुरात् तस्मात् स्वं ददर्श सुहृज्जनम् ॥ ७० ॥
तं बाष्पपरिपूर्णाक्षः पृष्ठतोऽनुजगाम ह ।
लक्ष्मणः परमक्रुद्धःसुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ७१ ॥
आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा रामः प्रदक्षिणम् ।
शनैर्जगाम सापेक्षो दृष्टिं तत्राविचालयन् ॥ ७२ ॥
न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति ।
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः ॥ ७३ ॥
न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम् ।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥ ७४ ॥
प्रतिषिध्य शुभं छत्रं व्यजने च स्वलंकृते ।
विसर्जयित्वा स्वजनं रथं पौरांस्तथा जनान् ॥ ७५ ॥

धारयन् मनसा दुःखमिन्द्रियाणि निगृह्य च ।
प्रविवेशात्मवान् वेश्म मातुरप्रियशंसिवान् ॥ ७६ ॥
सर्वोऽप्यभिजनः श्रीमाञ्छ्रीमतः सत्यवादिनः ।
नालक्षयत रामस्य किंचिदाकारमानने ॥ ७७ ॥
उचितं च महाबाहुर्न जहौ हर्षमात्मवान् ।
शारदः समुदीर्णांशुश्चन्द्रस्तेज इवात्मजम् ॥ ७८ ॥
वाचा मधुरया रामः सर्वं संमानयञ्जनम् ।
मातुः समीपं धर्मात्मा प्रविवेश महायशाः ॥ ७९ ॥
तं गुणैः समतां प्राप्तो भ्राता विपुलविक्रमः ।
सौमित्रिरनुवव्राज धारयन् दुःखमात्मजम् ॥ ८० ॥

मातृदर्शनम् ।

सोऽपश्यत्पुरुषं तत्र वृद्धं परमपूजितम् ।
उपविष्टं गृहद्वारि तिष्ठतश्चापरान् बहून् ॥ १ ॥
दृष्ट्वैव तु तदा रामं ते सर्वे समुपस्थिताः ।
जयेन जयतां श्रेष्ठं वर्धयन्ति स्म राघवम् ॥ २ ॥
प्रविश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्श सः ।
ब्राह्मणान् वेदसंपन्नान् वृद्धान् राज्ञाभिसत्कृतान् ॥ ३ ॥
प्रणम्य रामस्तान् वृद्धांस्तृतीयां ददर्श सः ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्पराः ॥ ४ ॥
वर्धयित्वा प्रहृष्टास्ताः प्रविश्य च गृहं स्त्रियः ।
न्यवेदयन्त त्वरितं राममातुः प्रियं तदा ॥ ५ ॥
कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता ।
प्रभाते चाकरोत् पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी ॥ ६ ॥
सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा ।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला ॥ ७ ॥

प्रविश्य तु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम् ।
ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम् ॥ ८ ॥
देवकार्यनिमित्तं च तत्रापश्यत् समुद्यतम् ।
दध्यक्षतं घृतं चैव मोदकान् हविषस्तथा ॥ ९ ॥
लाजान् माल्यानि शुक्लानि पायसं कृसरं तथा ।
समिधः पूर्णकुम्भांश्च ददर्श रघुनन्दनः ॥ १० ॥
तां शुक्लक्षौमसंवीतां व्रतयोगेन कर्शिताम् ।
तर्पयन्तीं ददर्शाद्भिर्देवतां वरवर्णिनीम् ॥ ११ ॥
सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम् ।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ॥ १२ ॥
स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः ।
परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि ॥ १३ ॥
तमुवाच दुराधर्षं राघवं सुतमात्मनः ।
कौसल्या पुत्रवात्सल्यादिदं प्रियहितं वचः ॥ १४ ॥
वृद्धानां धर्मशीलानां राजर्षीणां महात्मानाम् ।
प्राप्नुह्यायुश्च कीर्तिं च धर्मं चाप्युचितं कुले ॥ १५ ॥
सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानं पश्य राघव ।
अद्यैव त्वां स धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ १६ ॥
दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमन्त्रितः ।
मातरं राघवः किंचित् प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत् ॥ १७ ॥
स स्वभावविनीतश्च गौरवाच्च तथानतः ।
प्रस्थितो दण्डकारण्यमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥
देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम् ।
इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥ १९ ॥
गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे ।
विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः ॥ २० ॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने ।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम् ॥ २१ ॥
भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति ।
मां पुनर्दण्डकारण्ये विवासयति तापसम् ॥ २२ ॥
स षट् चाष्टौ च वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने ।
आसेवमानो वन्यानि फलमूलैश्च वर्तयन् ॥ २३ ॥
सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने ।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥ २४ ॥
तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव ।
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम् ॥ २५ ॥
उपावृत्त्योत्थितां दीनां वडवामिव वाहिताम् ।
पांसुगुण्ठितसर्वाङ्गीं विममर्श च पाणिना ॥ २६ ॥
सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता ।
उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे ॥ २७ ॥
यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव ।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजा ॥ २८ ॥
एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः ।
अप्रजास्मीति सन्तापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते ॥ २९ ॥
न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे ।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थितं मया ॥ ३० ॥
सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम् ।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां परा सती ॥ ३१ ॥
अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति ।
मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः ॥ ३२ ॥
त्वयि सन्निहितेऽप्येवमहमासं निराकृता ।
किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव मे ॥ ३३ ॥

अत्यन्तं निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमतन्त्रिता ।
परिवारेण कैकेय्याः समा वाप्यथवावरा ॥ ३४ ॥
यो हि मां सेवते कश्चिदपि वाप्यनुवर्तते ।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते ॥ ३५ ॥
नित्यक्रोधतया तस्याः कथं नु खरवादिनम् ।
कैकेय्या वदनं द्रष्टुं पुत्र शक्ष्यामि दुर्गता ॥ ३६ ॥
सप्त दश च वर्षाणि जातस्य तव राघव ।
अतीतानि प्रकांक्षन्त्या मया दुःखपरिक्षयम् ॥ ३७ ॥
तदक्षयं महद्दुःखं नोत्सहे सहितुं चिरात् ।
विप्रकारं सपत्नीनामेवं जीर्णापि राघव ॥ ३८ ॥
अपश्यन्ती तव मुखं परिपूर्णशशिप्रभम् ।
कृपणा वर्तयिष्यामि कथं कृपणजीविका ॥ ३९ ॥
उपवासैश्च योगैश्च बहुभिश्च परिश्रमैः ।
दुःखसंवर्धितो मोघं त्वं हि दुर्गतया मया ॥ ४० ॥
स्थिरं नु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते ।
प्रावृषीव महानद्याः स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा ॥ ४१ ॥

ममैव नूनं मरणं न विद्यते
न चावकाशोऽस्ति यमक्षये मम ।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति
प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव ॥ ४२ ॥

स्थिरं हि नूनं हृदयं ममायसं
न भिद्यते यद्भुवि नो विदीर्यते ।
अनेन दुःखेन च देहमर्पितं
ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते ॥ ४३ ॥

इदं तु दुःखं यदनर्थकानि मे
व्रतानि दानानि च संयमाश्च हि ।

ततश्च तप्तं यदपत्यकाम्यया
सुनिष्फलं बीजमिवोप्तमूषरे ॥ ४४ ॥

यदि ह्यकाले मरणं यदृच्छया
लभेत कश्चिद्गुरुदुःखकार्शितः ।
गताहमद्यैव परेतसंसदं
विना त्वया धेनुरिवात्मजेन वै ॥ ४५ ॥

अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा
त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ ।
अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः
सुदुर्बला वत्समिवाभिकांक्षया ॥ ४६ ॥

भृशमसुखममर्षिता यदा
बहु विललाप समीक्ष्य राघवम् ।
व्यसनमुपनिशाम्य सा महत्
सुतमिव बद्धमवेक्ष्य किंनरी ॥ ४७ ॥

तथा तु विलपन्तीं तां कौसल्यां राममातरम् ।
उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ॥ ४८ ॥
न रोचते ममाप्येतदार्ये यद्राघवो वनम् ।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत्स्त्रिया वाक्यवशंगतः ॥ ४९ ॥
विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः ।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः ॥ ५० ॥
नास्यापराधं पश्यामि नापि दोषं तथाविधम् ।
येन निर्वास्यते राष्ट्राद्वनवासाय राघवः ॥ ५१ ॥
अहं हनिष्ये पितरं वृद्धं कामवशं गतम् ।
स्त्रियायुक्तं च निर्लज्जं धर्मायुक्तं नृपं यथा ॥ ५२ ॥
न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नरः ।
स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदाहरेत् ॥ ५३ ॥

देवकल्पमृजुं दान्तं रिपूणामपि वत्सलम्।
अवेक्षमाणः को धर्मं त्यजेत्पुत्रमकारणात्॥ ५४ ॥
तदिदं वचनं राज्ञः पुनर्बाल्यमुपेयुषः ।
पुत्रः को हृदये कुर्याद्राजवृत्तमनुस्मरम्॥ ५५ ॥
यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः ।
तावदेव मया सार्धमात्मस्थं कुरु शासनम्॥ ५६ ॥
मया पार्श्वे सधनुषा तव गुप्तस्य राघव ।
कः समर्थोऽधिकं कर्तुं कृतान्तस्येव तिष्ठतः॥ ५७ ॥
निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये ॥ ५८ ॥
भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति ।
सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ॥ ५९ ॥
प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता ।
अमित्रभूतो निःसंगं वध्यतां वध्यतामपि ॥ ६० ॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥ ६१ ॥
बलमेष किमाश्रित्य हेतुं वा पुरुषोत्तम ।
दातुमिच्छति कैकेय्यै उपस्थितमिदं तव ॥ ६२ ॥
त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुत्तमम्।
कास्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतायारिशासन ॥ ६३ ॥
अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः ।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥ ६४ ॥
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥ ६५ ॥
हरामि वीर्याद्दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः ।
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु ॥ ६६ ॥

हरिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम् ।
कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ॥ ६७ ॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
उवाच रामं कौसल्या रुदती शोकलालसा ॥ ६८ ॥
भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया ।
यदत्रानन्तरं तत्त्वं कुरुष्व यदि रोचते ॥ ६९ ॥
न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम् ।
विहाय शोकसंतप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥ ७० ॥
धर्मज्ञ इति धर्मिष्ठ धर्मं चरितुमिच्छसि ।
शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ॥ ७१ ॥
शुश्रूषुर्जननीं पुत्र स्वगृहे नियतो वसन् ।
परेण तपसा युक्तः काश्यपस्त्रिदिवं गतः ॥ ७२ ॥
यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम् ।
त्वां साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ॥ ७३ ॥
त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन च ।
त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम् ॥ ७४ ॥
यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम् ।
अहं प्रायमिहासिष्ये न च शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ ७५ ॥
ततस्त्वं प्राप्स्यसे पुत्र निरयं लोकविश्रुतम् ।
ब्रह्महत्यामिवाधर्मात्समुद्रः सरितां पतिः ॥ ७६ ॥
विलपन्तीं तथा दीनां कौसल्यां जननीं ततः ।
उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥ ७७ ॥
नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥ ७८ ॥
ऋषिणा च पितुर्वाक्यं कुर्वता वनचारिणा ।
गौर्हता जानता धर्मं कण्डुना च विपश्चिता ॥ ७९ ॥

अस्माकं तु कुले पूर्वं सगरस्याज्ञया पितुः ।
खनद्भिः सागरैर्भूमिमवाप्तः सुमहान्वधः ॥ ८० ॥
जामदग्न्येन रामेण रेणुका जननी स्वयम् ।
कृत्ता परशुनारण्ये पितुर्वचनकारणात् ॥ ८१ ॥
एतैरन्यैश्च बहुभिर्देवि देवसमैः कृतम् ।
पितुर्वचनमक्लीवं करिष्यामि पितुर्हितम् ॥ ८२ ॥
न खल्वेतन्मयैकेन क्रियते पितृशासनम् ।
एतैरपि कृतं देवि ये मया परिकीर्तिताः ॥ ८३ ॥
नाहं धर्ममपूर्वं ते प्रतिकूलं प्रवर्तये ।
पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते ॥ ८४ ॥
तदेतत्तु मया कार्यं क्रियते भुवि नान्यथा ।
पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्नाम हीयते ॥ ८५ ॥
तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत् ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ८६ ॥
तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् ।
विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥ ८७ ॥
मम मातुर्महद्दुःखमतुलं शुभलक्षण ।
अभिप्रायं न विज्ञाय सत्यस्य च शमस्य च ॥ ८८ ॥
धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्मसंश्रितमप्येतत्पितुर्वचनमुत्तमम् ॥ ८९ ॥
संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा ।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ॥ ९० ॥
सोऽहं न शक्यामि पितुर्नियोगमतिवर्तितुम् ।
पितुर्हि वचनाद्वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥ ९१ ॥
तदेतां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम् ।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम् ॥ ९२ ॥

तमेवमुक्त्वा सौहार्दाद्भ्रातरं लक्ष्मणाग्रजः ।
उवाच भूयः कौसल्यां प्राञ्जलिः शिरसा नतः ॥ ९३ ॥
अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम् ।
शापितासि मम प्राणैः कुरु स्वस्त्ययनानि मे ॥ ९४ ॥
तीर्णप्रतिज्ञश्च वनात्पुनरेष्याम्यहं पुरीम् ।
ययातिरिव राजर्षिः पुरा हित्वा पुनर्दिवम् ॥ ९५ ॥
शोकः संधार्यतां मातर्हृदये साधु मा शुचः ।
वनवासादिहैष्यामि पुनः कृत्वा पितुर्वचः ॥ ९६ ॥
त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया ।
पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः ॥ ९७ ॥
अम्ब संभृत्य संभारान्दुःखं हृदि निगृह्य च ।
वनवासकृता बुद्धिर्मम धर्म्यानुवर्त्यताम् ॥ ९८ ॥

एतद्वचस्तस्य निशम्य माता
सुधर्म्यमव्यग्रमविक्लवं च ।
मृतेव संज्ञां प्रतिलभ्य देवी
समीक्ष्य रामं पुनरित्युवाच ॥ ९९ ॥
यथैव ते पुत्र पिता तथाहं
गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तया च ।
न त्वानुजानामि न मां विहाय
सुदुःखितामर्हसि पुत्र गन्तुम् ॥ १०० ॥
किं जीवितेनेह विना त्वया मे
लोकेन वा किं स्वधयाऽमृतेन ।
श्रेयो मुहूर्तं तव सन्निधानं
ममैव कृत्स्नादपि जीवलोकात् ॥ १०१ ॥
नरैरिवोल्काभिरपोह्यमानो
महागजो ध्वान्तमभिप्रविष्टः ।

भूयः प्रजज्वाल विलापमेवं
निशम्य रामः करुणं जनन्याः ॥ १०२ ॥
स मातरं चैव विसंज्ञकल्प-
मार्तं च सौमित्रिमभिप्रतप्तम् ।
धर्मे स्थितो धर्म्यमुवाच वाक्यं
यथा स एवार्हति तत्र वक्तुम् ॥ १०३ ॥
अहं हि ते लक्ष्मण नित्यमेव
जानामि भक्तिं च पराक्रमं च ।
मम त्वभिप्रायमसंनिरीक्ष्य
मात्रा सहाभ्यर्दसि मां सुदुःखम् ॥ १०४ ॥
धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके
समीक्षिता धर्मफलोदयेषु ।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे
भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा ॥ १०५ ॥
यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसन्निविष्टा
धर्मो यतः स्यात्तदुपक्रमेत ।
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके
कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता ॥ १०६ ॥
गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः
क्रोधात्प्रहर्षादथवापि कामात् ।
यद्व्यादिशेत्कार्यमवेक्ष्य धर्मं
कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥ १०७ ॥
न तेन शक्नोमि पितुः प्रतिज्ञा-
मिमां न कर्तुं सकलां यथावत् ।
स ह्यावयोस्तात गुरुर्नियोगे
देव्याश्च भर्ता स गतिश्च धर्मः ॥ १०८ ॥

तस्मिन्पुनर्जीवति धर्मराजे
विशेषतः स्वे पथि वर्तमाने ।
देवी मया सार्धमितोऽभिगच्छेत्
कथं स्विदन्या विधवेव नारी ॥ १०९ ॥

सा मानुमन्यस्व वनं व्रजन्तं
कुरुष्व नः स्वस्त्ययनानि देवि ।
यथा समाप्ते पुनराव्रजेयं
यथा हि सत्येन पुनर्ययातिः ॥ ११० ॥

यशो ह्यहं केवलराज्यकारणा-
न्न पृष्ठतः कर्तुमलं महोदयम् ।
अदीर्घकाले न तु देवि जीविते
वृणेऽवरामद्य महीमधर्मतः ॥ १११॥

प्रसादयन्नरवृषभः स मातरं
पराक्रमाज्जिगमिषुरेव दण्डकान् ।
अथानुजं भृशमनुशास्य दर्शनं
चकार तां हृदि जननीं प्रदक्षिणम् ॥ ११२ ॥

तं समीक्ष्य व्यवसितं पितुर्निर्देशपालने ।
कौसल्या बाष्पसंरुद्धा वचो धर्मिष्ठमब्रवीत् ॥ ११३ ॥
अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ।
मयि जातो दशरथात्कथमुञ्छेन वर्तयेत् ॥ ११४ ॥
यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते ।
कथं स भोक्ष्यते रामो वने मूलफलान्ययम् ॥ ११५ ॥
क एतच्छ्रद्दधेच्छ्रुत्वा कस्य वा न भवेद्भयम् ।
गुणवान्दयितो राज्ञः काकुत्स्थो यद्विवास्यते ॥ ११६ ॥
नूनं तु बलवांल्लोके कृतान्तः सर्वमादिशन् ।
लोके रामाभिरामस्त्वं वनं यत्र गमिष्यासि ॥ ११७ ॥

अयं तु मामात्मभवस्तवादर्शनमारुतः ।
विलापदुःखसमिधो रुदिताश्रुहुताहुतिः ॥ ११८ ॥
चिन्तावाष्पमहाधूमस्तवागमनचिन्तजः ।
कर्शयित्वाधिकं पुत्र निःश्वासायाससंभवः ॥ ११६ ॥
त्वया विहीनामिह मां शोकाग्निरतुलो महान् ।
प्रधक्ष्यति यथा कक्षं चित्रभानुर्हिमात्यये ॥ १२० ॥
कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति ।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि ॥ १२१ ॥
यथा निगदितं मात्रा तद्वाक्यं पुरुषर्षभः ।
श्रुत्वा रामोऽब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥ १२२ ॥
कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते ।
भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥ ११३ ॥
भर्तुः पुनः परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः ।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥ १२४ ॥
यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः ।
शुश्रूषा क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः ॥ १२५ ॥
एवमुक्ता तु रामेण कौसल्या शुभदर्शना ।
तथेत्युवाच सुप्रीता राममक्लिष्टकारिणम् ॥ १२६ ॥
एवमुक्तस्तु वचनं रामो धर्मभृतां वरः ।
भूयस्तामब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥ १२७ ॥
मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः ।
राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ १२८ ॥
इमानि तु महारण्ये विहृत्य नव पञ्च च ।
वर्षाणि परमप्रीत्या स्थास्यामि वचने तव ॥ १२६ ॥
एवमुक्ता प्रियं पुत्रं वाष्पपूर्णानना तदा ।
उवाच परमार्ता तु कौसल्या सुतवत्सला ॥ १३० ॥

आसां राम सपत्नीनां वस्तुं मध्ये न मे क्षमम् ।
नय मामपि काकुत्स्थ वनं वन्यां मृगीमिव ॥ १३१ ॥
यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरपेक्षया ।
तां तथा रुदतीं रामोऽरुदन्वचनमब्रवीत् ॥ १३२ ॥
जीवन्त्या हि स्त्रियां भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ।
भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ॥ १३३ ॥
न ह्यनाथा वयं राज्ञा लोकनाथेन धीमता ।
भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ॥ १३४ ॥
भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा ।
यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः ॥ १३५ ॥
श्रमं नावाप्नुयात्किंचिदप्रमत्ता तथा कुरु ।
दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् ॥ १३६ ॥
राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ।
व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ॥ १३७ ॥
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् ।
भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३८ ॥
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ।
शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता ॥ १३९ ॥
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ।
अग्निकार्येषु च सदा सुमनोभिश्च देवताः ॥ १४० ॥
पूज्यास्ते मत्कृते देवि ब्राह्मणाश्चैव सत्कृताः ।
एवं कालं प्रतीक्षस्व ममागमनकाङ्क्षिणी ॥ १४१ ॥
नियता नियताहारा भर्तृशुश्रूषणे रता ।
प्राप्स्यसे परमं कामं मयि पर्यागते सति ।
यदि धर्मभृतां श्रेष्ठो धारयिष्यति जीवितम् ॥ १४२ ॥

आशीर्वादः ।

एवमुक्ता तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक ।
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः ॥ २ ॥
पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा ।
प्रत्यागते महाभागे कृतार्थे चरितव्रते ॥ ३ ॥
पितुरानृण्यतां प्राप्ते स्वपिष्ये परमं सुखम् ।
कृतान्तस्य गतिः पुत्र दुर्विभाव्या सदा भुवि ॥ ४ ॥
यस्त्वां संचोदयति मे वच आविद्धय राघव ।
गच्छेदानीं महाबाहो क्षेमेण पुनरागतः ॥ ५ ॥
सा विनीय तमायासमुपस्पृश्य जलं शुचि ।
चकार माता रामस्य मङ्गलानि मनस्विनी ॥ ६ ॥
न शक्यते वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम ।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ॥ ७ ॥
यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च ।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥ ८ ॥
येभ्यः प्रणमसे पुत्र देवेष्वायतनेषु च ।
ते च त्वामभिरक्षन्तु वने सह महर्षिभिः ॥ ९ ॥
यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ।
तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणैः समुदितं सदा ॥ १० ॥
पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा ।
सत्येन च महाबाहो चिरं जीवाभिरक्षितः ॥ ११ ॥
समित्कुशपवित्राणि वेद्यश्चायतनानि च ।
स्थण्डिलानि च विप्राणां शैला वृक्षाः क्षुपा ह्रदाः ॥ १२ ॥

पतङ्गाः पन्नगाः सिंहास्त्वां रक्षन्तु नरोत्तम ।
स्वस्ति साध्याश्च विश्वे च मरुतश्च महर्षिभिः ॥ १३ ॥
स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा ।
लोकपालाश्च ते सर्वे वासवप्रमुखास्तथा ॥ १४ ॥
ऋतवः षट् च ते सर्वे मासाः संवत्सराः क्षपाः ।
दिनानि च मुहूर्तांश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥ १५ ॥
श्रुतिः स्मृतिश्च धर्मश्च पातु त्वां पुत्र सर्वतः ।
स्कन्दश्च भगवान्देवः सोमश्च सबृहस्पतिः ॥ १६ ॥
सप्तर्षयो नारदश्च ते त्वां रक्षन्तु सर्वतः ।
ते चापि सर्वतः सिद्धा दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ १७ ॥
स्तुता मया वने तस्मिन्पान्तु त्वां पुत्र नित्यशः ।
शैलाः सर्वे समुद्राश्च राजा वरुण एव च ॥ १८ ॥
द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी वायुश्च सचराचरः ।
नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहाश्च सह दैवतैः ॥ १९ ॥
अहोरात्रे तथा सन्ध्ये पान्तु त्वां वनमाश्रितम् ।
ऋतवश्चापि षट् चान्ये मासाः संवत्सरास्तथा ॥ २० ॥
कलाश्च काष्ठाश्च तथा तव शर्म दिशन्तु ते ।
महावनेऽपि चरतो मुनिवेशस्य धीमतः ॥ २१ ॥
तथा देवाश्च दैत्याश्च भवन्तु सुखदाः सदा ।
राक्षसानां पिशाचानां रौद्राणां क्रूरकर्मणाम् ॥ २२ ॥
क्रव्यादानां च सर्वेषां मा भूत्पुत्रक ते भयम् ।
प्लवगा वृश्चिका दंशा मशकाश्चैव कानने ॥ २३ ॥
सरीसृपाश्च कीटाश्च मा भूवन्गहने तव ।
महाद्विपाश्च सिंहाश्च व्याघ्रा ऋक्षाश्च दंष्ट्रिणः ॥ २४ ॥
महिषाः शृङ्गिणो रौद्रा न ते द्रुह्यन्तु पुत्रक ।
नृमांसभोजना रौद्रा ये चान्ये सर्वजातयः ॥ २५ ॥

मा च त्वां हिंसिषुः पुत्र मया संपूजितास्त्विह ।
आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः ॥ २६ ॥
सर्वसंपत्तयो राम स्वस्तिमान्गच्छ पुत्रक ।
स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यः पुनः पुनः ॥ २७ ॥
सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो ये च ते परिपन्थिनः ।
शुक्रः सोमश्च सूर्यश्च धनदोऽथ यमस्तथा ॥ २८ ॥
पान्तु त्वामर्चिता राम दण्डकारण्यवासिनम् ।
अग्निर्वायुस्तथा धूमो मन्त्राश्चर्षिमुखच्युताः ॥ २९ ॥
उपस्पर्शनकाले तु पान्तु त्वां रघुनन्दन ।
सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्ता तथर्षयः ॥ ३० ॥
ये च शेषाः सुरास्ते तु रक्षन्तु वनवासिनम् ।
इति माल्यैः सुरगणान्गन्धैश्चापि यशस्विनी ॥ ३१ ॥
स्तुतिभिश्चानुरूपाभिरानर्चायतलोचना ।
ज्वलनं समुपादाय ब्राह्मणेन महात्मना ॥ ३२ ॥
हावयामास विधिना राममङ्गलकारणात् ।
घृतं श्वेतानि माल्यानि समिधश्चैव सर्षपान् ॥ ३३ ॥
उपसंपादयामास कौसल्या परमाङ्गना ।
उपाध्यायः स विधिना हुत्वा शान्तिमनामयम् ॥ ३४ ॥
हुतहव्यावशेषेण बाह्यं बलिमकल्पयत् ।
मधुदध्यक्षतघृतैः स्वस्तिवाच्यं द्विजांस्ततः ॥ ३५ ॥
वाचयामास रामस्य वने स्वस्त्ययनक्रियाम् ।
ततस्तस्मै द्विजेन्द्राय राममाता यशस्विनी ॥ ३६ ॥
दक्षिणां प्रददौ काम्यां राघवं चेदमब्रवीत् ।
यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ॥ ३७ ॥
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ।
यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताऽकल्पयत्पुरा ॥ ३८ ॥

अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ।
अमृतोत्पादने दैत्यान्घ्नतो वज्रधरस्य यत् ॥ ३९ ॥
अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ।
त्रिविक्रमान्प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः ॥ ४० ॥
यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ।
ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ताः ॥ ४१ ॥
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु शुभमङ्गलम् ।
इति पुत्रस्य शेषाश्च कृत्वा शिरसि भामिनी ॥ ४२ ॥
गन्धैश्चापि समालभ्य राममायतलोचना ।
ओषधीं च सुसिद्धार्थं विशल्यकरणीं शुभाम् ॥ ४३ ॥
चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रैरभिजजाप च ।
उवाचापि प्रहृष्टेव सा दुःखवशवर्तिनी ॥ ४४ ॥
वाङ्मात्रेण न भावेन वाचा संसज्जमानया ।
आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी ॥ ४५ ॥
अवदत्पुत्रमिष्टार्थो गच्छ राम यथासुखम् ।
अरोगं सर्वसिद्धार्थमयोध्यां पुनरागतम् ॥ ४६ ॥
पश्यामि त्वां सुखं वत्स संधितं राजवर्त्मसु ।
भद्रासनगतं राम वनवासादिहागतम् ॥
द्रक्ष्यामि च पुनस्त्वां तु तीर्णवन्तं पितुर्वचः ॥ ४७ ॥
मङ्गलैरुपसंपन्नो वनवासादिहागतः ।
वध्वाश्च मम नित्यं त्वं कामान्संवर्ध याहि भोः ॥ ४८ ॥

मयार्चिता देवगणाः शिवादयो
महर्षयो भूतगणाः सुरोरगाः ।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते
हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्च राघव ॥ ४९ ॥

इतीव चाश्रुप्रतिपूर्णलोचना
समाप्य च स्वस्त्ययनं यथाविधि ।
प्रदक्षिणं चापि चकार राघवं
पुनः पुनश्चापि निरीक्ष्य सस्वजे ॥ ५० ॥
तया हि देव्या च कृतप्रदक्षिणो
निपीड्य मातुश्चरणौ पुनः पुनः ।
जगाम सीतानिलयं महायशाः
स राघवः प्रज्वलितस्तया श्रिया ॥ ५१ ॥

पतिव्रता सीता ।

प्रविवेशाथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम् ।
प्रहृष्टजनसंपूर्णं ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥
अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम् ।
अपश्यच्छोकसंतप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ॥ २ ॥
तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम् ।
तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः ॥ ३ ॥
विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम् ।
आह दुःखाभिसन्तप्ता किमिदानीमिदं प्रभो ॥ ४ ॥
अद्य बार्हस्पतः श्रीमान्युक्तः पुष्येण राघव ।
प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः ॥ ५ ॥
न ते शतशलाकेन जलफेननिभेन च ।
आवृतं वदनं वल्गुच्छत्रेणाभिविराजते ॥ ६ ॥
व्यजनाभ्यां च मुख्याभ्यां शतपत्रनिभेक्षणम् ॥ ७ ॥
चन्द्रहंसप्रकाशाभ्यां वीज्यते न तवाननम् ॥ ७ ॥
वाग्मिनो वन्दिनश्चापि प्रहृष्टास्त्वां नरर्षभ ।
स्तुवन्तो नाद्य दृश्यन्ते मङ्गलैः सूतमागधाः ॥ ८ ॥

न ते क्षौद्रं च दधि च ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
मूर्ध्नि मूर्धाभिषिक्तस्य ददति स्म विधानतः ॥ ९ ॥
न त्वां प्रकृतयः सर्वाः श्रेणीमुख्याश्च भूषिताः ।
अनुव्रजितुमिच्छन्ति पौरजानपदास्तथा ॥ १० ॥
चतुर्भिर्वेगसम्पन्नैर्हयैः काञ्चनभूषणैः ।
मुख्यः पुष्परथो युक्तः किं न गच्छति तेऽग्रतः ॥ ११ ॥
न हस्ती चाग्रतः श्रीमान्सर्वलक्षणपूजितः ।
प्रयाणे लक्ष्यते वीर कृष्णमेघगिरिप्रभः ॥ १२ ॥
न च काञ्चनचित्रं ते पश्यामि प्रियदर्शन ।
भद्रासनं पुरस्कृत्य यान्तं वीरपुरःसरम् ॥ १३ ॥
अभिषेको यदा सज्जः किमिदानीमिदं तव ।
अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते ॥ १४ ॥
इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः ।
सीते तत्रभवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम् ॥ १५ ॥
कुले महति संभूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि ।
शृणु जानकि येनेदं क्रमेणाद्यागतं मम ॥ १६ ॥
राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन वै ।
कैकेय्यै मम मात्रे तु पुरा दत्तौ महावरौ ॥ १७ ॥
तयाद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते ।
प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥ १८ ॥
चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया ।
पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ॥ १९ ॥
सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम् ।
भरतस्य समीपे ते नाहं कत्थ्यः कदाचन ॥ २० ॥
ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।
तस्मान्न ते गुणाः कत्थ्या भरतस्याग्रतो मम ॥ २१ ॥

अहं ते नानुवक्तव्यो विशेषेण कदाचन ।
अनुकूलतया शक्यं समीपे तस्य वर्तितुम् ॥ २२ ॥
तस्मै दत्तं नृपतिना यौवराज्यं सनातनम् ।
स प्रसाद्यस्त्वया सीते नृपतिश्च विशेषतः ॥ २३ ॥
अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् ।
वनमद्यैव यास्यामि स्थिरीभव मनस्विनि ॥ २४ ॥
याते च मयि कल्याणि वनं मुनिनिषेवितम् ।
व्रतोपवासपरया भवितव्यं त्वयानघे ॥ २५ ॥
कल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि ।
वन्दितव्यो दशरथः पिता मम जनेश्वरः ॥ २६ ॥
माता च मम कौसल्या वृद्धा संतापकर्शिता ।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः संमानमर्हति ॥ २७ ॥
वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।
स्नेहप्रणयसंभोगैः समा हि मम मातरः ॥ २८ ॥
भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः ।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥ २९ ॥
विप्रियं च न कर्तव्यं भरतस्य कदाचन ।
स हि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्य च ॥ ३० ॥
आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसेविताः ।
राजानः संप्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये ॥ ३१ ॥
औरस्यानपि पुत्रान्हि त्यजन्त्यहितकारिणः ।
समर्थान्संप्रगृह्णन्ति जनानपि नराधिपाः ॥ ३२ ॥
सा त्वं वसेह कल्याणि राज्ञः समनुवर्तिनी ।
भरतस्य रता धर्मे सत्यव्रतपरायणा ॥ ३३ ॥
अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये
त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि ।

यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित्
तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम ॥ ३४ ॥
एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी ।
प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
किमिदं भाषसे राम वाक्यं लघुतया ध्रुवम् ।
त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरोत्तम ॥ ३६ ॥
वीराणां राजपुत्राणां शस्त्रास्त्रविदुषां नृप ।
अनर्हमयशस्यं च न श्रोतव्यं त्वयेरितम् ॥ ३७ ॥
आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा ।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ॥ ३८ ॥
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥ ३९ ॥
न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥ ४० ॥
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृदन्ती कुशकण्टकान् ॥ ४१ ॥
ईर्ष्या रोषं बहिष्कृत्य भुक्तशेषमिवोदकम् ।
नय मां वीर विस्रब्धः पापं मयि न विद्यते ॥ ४२ ॥
प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा ।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥ ४३ ॥
अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्मि संप्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ॥ ४४ ॥
अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलगणसेवितम् ॥ ४५ ॥
सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः ।
अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ॥ ४६ ॥

शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ।
सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु ॥ ४७ ॥
त्वं हि कर्तुं वने शक्तो राम संपरिपालनम् ।
अन्यस्यापि जनस्येह किं पुनर्मम मानद ॥ ४८ ॥
साहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः ।
नाहं शक्या महाभाग निवर्तयितुमुद्यता ॥ ४९ ॥
फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः ।
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा ॥ ५० ॥
अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि ।
इच्छामि परतः शैलान्पल्वलानि सरांसि च ॥ ५१ ॥
द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता त्वया नाथेन धीमता ।
हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिनी साधुपुष्पिताः ॥ ५२ ॥
इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं त्वया वीरेण संगता ।
अभिषेकं करिष्यामि तासु नित्यमनुव्रता ॥ ५३ ॥
सह त्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनन्दिनी ।
एवं वर्षसहस्राणि शतं वापि त्वया सह ॥ ५४ ॥
व्यतिक्रमं न वेत्स्यामि स्वर्गोऽपि हि न मे मतः ।
स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव ॥
त्वया विना नरव्याघ्र नाहं तदपि रोचये ॥ ५५ ॥
अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं
मृगायुतं वानरवारणैर्युतम् ।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे
तवैव पादावुपगृह्य संमता ॥ ५६ ॥
अनन्यभावामनुरक्तचेतसं
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् ।

नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां
नातो मया ते गुरुता भविष्यति ॥ ५७ ॥
तथा ब्रुवाणामपि धर्मवत्सलां
न च स्म सीतां नृवरो निनीषति ।
उवाच चैनां बहु सन्निवर्तने
वने निवासस्य च दुःखितां प्रति ॥ ५८ ॥
स एवं ब्रुवतीं सीतां धर्मज्ञां धर्मवत्सलः ।
न नेतुं कुरुते बुद्धिं वने दुःखानि चिन्तयन् ॥ ५९ ॥
सान्त्वयित्वा ततस्तां तु बाष्पदूषितलोचनाम् ।
निवर्तनार्थे धर्मात्मा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६० ॥
सीते महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा ।
इहाचरस्व धर्मं त्वं यथा मे मनसः सुखम् ॥ ६१ ॥
सीते यथा त्वां वक्ष्यामि तथा कार्यं त्वयाबले ।
वने दोषा हि बहवो वसतस्तान्निबोध मे ॥ ६२ ॥
सीते विमुच्यतामेषा वनवासकृता मतिः ।
बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्यभिधीयते ॥ ६३ ॥
हितबुद्ध्या खलु वचो मयैतदभिधीयते ।
सदा सुखं न जानामि दुःखमेव सदा वनम् ॥ ६४ ॥
गिरिनिर्झरसंभूता गिरिनिर्दरिवासिनाम् ।
सिंहानां निनदा दुःखाः श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥ ६५ ॥
क्रीडमानाश्च विस्रब्धा मत्ताः शून्ये तथा मृगाः ।
दृष्ट्वा समभिवर्तन्ते सीते दुःखमतो वनम् ॥ ६६ ॥
सग्राहाः सरितश्चैव पङ्कवत्यस्तु दुस्तराः ।
मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥ ६७ ॥
लताकण्टकसंकीर्णाः कृकवाकूपनादिताः ।
निरपाश्च सुदुःखाश्च मार्गा दुःखमतो वनम् ॥ ६८ ॥

सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयंभग्नासु भूतले ।
रात्रिषु श्रमखिन्नेन तस्माद्दुःखमतो वनम् ॥ ६९ ॥
अहोरात्रं च सन्तोषः कर्तव्यो नियतात्मना ।
फलैर्वृक्षावपतितैः सीते दुःखमतो वनम् ॥ ७० ॥
उपवासश्च कर्तव्यो यथा प्राणेन मैथिलि ।
जटाभारश्च कर्तव्यो वल्कलाम्बरधारणम् ॥ ७१ ॥
देवतानां पितॄणां च कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ।
प्राप्तानामतिथीनां च नित्यशः प्रतिपूजनम् ॥ ७२ ॥
कार्यस्त्रिरभिषेकश्च काले काले च नित्यशः ।
चरतां नियमेनैव तस्माद्दुःखतरं वनम् ॥ ७३ ॥
उपहारश्च कर्तव्यः कुसुमैः स्वयमाहृतैः ।
आर्षेण विधिना वेद्यां सीते दुःखमतो वनम् ॥ ७४ ॥
यथालब्धेन कर्तव्यः संतोषस्तेन मैथिलि ।
यथाहारैर्वनचरैः सीते दुःखमतो वनम् ॥ ७५ ॥
अतीव वातास्तिमिरं बुभुक्षा चास्ति नित्यशः ।
भयानि च महान्त्यत्र अतो दुःखतरं वनम् ॥ ७६ ॥
सरीसृपाश्च बहवो बहुरूपाश्च भामिनि ।
चरन्ति पथि ते दर्पात्ततो दुःखतरं वनम् ॥ ७७ ॥
नदीनिलयनाः सर्पा नदीकुटिलगामिनः ।
तिष्ठन्त्यावृत्य पन्थानमतो दुःखतरं वनम् ॥ ७८ ॥
पतङ्गा वृश्चिकाः कीटा दंशाश्च मशकैः सह ।
बाधन्ते नित्यमबले सर्वे दुःखमतो वनम् ॥ ७९ ॥
द्रुमाः कण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि ।
वने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुःखमतो वनम् ॥ ८० ॥
कायक्लेशाश्च बहवो भयानि विविधानि च ।
अरण्यवासे वसतो दुःखमेव सदा वनम् ॥ ८१ ॥

क्रोधलोभौ विमोक्तव्यौ कर्तव्या तपसे मतिः ।
न भेतव्यं च भेतव्ये दुःखं नित्यमतो वनम् ॥ ८२ ॥
तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव ।
विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥ ८३ ॥
वनं तु नेतुं न कृता मतिर्यदा
बभूव रामेण तदा महात्मना ।
न तस्य सीता वचनं चकार तं
ततोऽब्रवीद्राममिदं सुदुःखिता ॥ ८४ ॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुःखिता ।
प्रसक्ताश्रुमुखी मन्दमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८५ ॥
ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति ।
गुणानित्येव तान्विद्धि तव स्नेहपुरस्कृता ॥ ८६ ॥
मृगाः सिंहा गजाश्चैव शार्दूलाः शरभास्तथा ।
चमराः सृमराश्चैव ये चान्ये वनचारिणः ॥ ८७ ॥
अदृष्टपूर्वरूपत्वात्सर्वे ते तव राघव ।
रूपं दृष्ट्वाऽपसर्पेयुस्तव सर्वे हि बिभ्यति ॥ ८८ ॥
त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया ।
त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवितम् ॥ ८९ ॥
नहि मां त्वत्समीपस्थामपि शक्रोऽपि राघव ।
सुराणामीश्वरः शक्तः प्रधर्षयितुमोजसा ॥ ९० ॥
पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम् ।
काममेवंविधं राम त्वया मम निदर्शितम् ॥ ९१ ॥
अथापि च महाप्राज्ञ ब्राह्मणानां मया श्रुतम् ।
पुरा पितृगृहे सत्यं वस्तव्यं किल मे वने ॥ ९२ ॥
लक्षणिभ्यो द्विजातिभ्यः श्रुत्वाहं वचनं गृहे ।
वनवासकृतोत्साहा नित्यमेव महाबल ॥ ९३ ॥

आदेशो वनवासस्य प्राप्तव्यः स मया किल ।
सा त्वया सह भर्त्राहं यास्यामि प्रिय नान्यथा ॥ ९४ ॥
कृतादेशा भविष्यामि गमिष्यामि त्वया सह ।
कालश्चायं समुत्पन्नः सत्यवाग्भवतु द्विजः ॥ ९५ ॥
वनवासे हि जानामि दुःखानि बहुधा किल ।
प्राप्यन्ते नियतं वीर पुरुषैरकृतात्मभिः ॥ ९६ ॥
कन्यया च पितुर्गेहे वनवासः श्रुतो मया ।
भिक्षिण्याः शमवृत्ताया मम मातुरिहाग्रतः ॥ ९७ ॥
प्रसादितश्च वै पूर्वं त्वं मे बहुतिथं प्रभो ।
गमनं वनवासस्य काङ्क्षितं हि सह त्वया ॥ ९८ ॥
कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव ।
वनवासस्य शूरस्य मम चर्या हि रोचते ॥ ९९ ॥
शुद्धात्मन्प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा ।
भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि मम दैवतम् ॥ १०० ॥
प्रेत्यभावे हि कल्याणः संगमो मे सदा त्वया ।
श्रुतिर्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां यशस्विनाम् ॥ १०१ ॥
इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल ।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ॥ १०२ ॥
एवमस्मात्स्वकां नारीं सुवृत्तां हि पतिव्रताम् ।
नाभिरोचयसे नेतुं त्वं मां केनेह हेतुना ॥ १०३ ॥
भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः ।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥ १०४ ॥
यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि ।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥ १०५ ॥
एवं बहुविधं तं सा याचते गमनं प्रति ।
नानुमेने महाबाहुस्तां नेतुं विजनं वनम् ॥ १०६ ॥

एवमुक्ता तु सा चिन्ता मैथिली समुपागता ।
स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥ १०७ ॥
चिन्तयन्तीं तदा तां तु निवर्तयितुमात्मवान् ।
क्रोधाविष्टां तु वैदेहीं काकुत्स्थो बह्वसान्त्वयत् ॥ १०८ ॥
सान्त्व्यमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा ।
वनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १०९ ॥
सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम् ।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥ ११० ॥
किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥ १११ ॥
अनृतं वत लोकोऽयमज्ञानाद्यदि वक्ष्यति ।
तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥ ११२ ॥
किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते ।
यत्परित्यक्तुकामस्त्वं मामनन्यपरायणाम् ॥ ११३ ॥
द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनुव्रताम् ।
सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनीम् ॥ ११४ ॥
न त्वहं मनसा त्वन्यं द्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ ।
त्वया राघव गच्छेयं यथान्या कुलपांसनी ॥ ११५ ॥
स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम् ।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ॥ ११६ ॥
यस्य पथ्यं च रामात्थ यस्य चार्थेऽवरुध्यसे ।
त्वं तस्य भव वश्यश्च विधेयश्च सदानघ ॥ ११७ ॥
स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि ।
तपो वा यदि वारण्यं स्वर्गो वा स्यात्त्वया सह ॥ ११८ ॥
न च मे भविता तत्र कश्चित्पथि परिश्रमः ।
पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्विव ॥ ११९ ॥

कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः ।
तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया ॥ १२० ॥
महावातसमुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति ।
रजो रमण तन्मन्ये परार्घ्यमिव चन्दनम् ॥ १२१ ॥
शाद्वलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा ।
कुथास्तरणयुक्तेषु किं स्यात्सुखतरं ततः ॥ १२२ ॥
पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु ।
दास्यसे स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥ १२३ ॥
न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः ।
आर्तवान्युपभुञ्जाना पुष्पाणि च फलानि च ॥ १२४ ॥
न च तत्र ततः किंचिद्द्रष्टुमर्हसि विप्रियम् ।
मत्कृते न च ते शोको न भविष्यामि दुर्भरा ॥ १२५ ॥
यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना ।
इति जानन्परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह ॥ १२६ ॥
अथ मामेवमव्यग्रां वनं नैव नयिष्यसि ।
विषमद्यैव पास्यामि मा वशं द्विषतां गमम् ॥ १२७ ॥
पश्चादपि हि दुःखेन मम नैवास्ति जीवितम् ।
उज्झितायास्त्वया नाथ तदैव मरणं वरम् ॥ १२८ ॥
इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
किं पुनर्दशवर्षाणि त्रीणि चैकं च दुःखिता ॥ १२९ ॥
इति सा शोकसंतप्ता विलप्य करुणं बहु ।
चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम् ॥ १३० ॥
सा विद्धा बहुभिर्वाक्यैर्दिग्धैरिव गजाङ्गना ।
चिरसंनियतं बाष्पं मुमोचाग्निमिवारणिः ॥ १३१ ॥
तस्याः स्फटिकसंकाशं वारि सन्तापसंभवम् ।
नेत्राभ्यां परिसुस्राव पङ्कजाभ्यामिवोदकम् ॥ १३२ ॥

तत्सितामलचन्द्राभं मुखमायतलोचनम्।
पर्यशुष्यत बाष्पेण जलोद्धृमिवाम्बुजम्॥ १३३॥
तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम्।
उवाच वचनं रामः परिविश्वासयंस्तदा॥ १३४॥
न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये।
नहि मेऽस्ति भयं किंचित्स्वयंभोरिव सर्वतः॥ १३५॥
तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे॥ १३६॥
यत्सृष्टासि मया सार्धं वनवासाय मैथिली।
न विहातुं मया शक्या प्रीतिरात्मवता यथा॥ १३७॥
धर्मस्तु गजनासोरु सद्भिराचरितः पुरा।
तं चाहमनुवर्तिष्ये यथा सूर्यं सुवर्चला॥ १३८॥
न खल्वहं न गच्छेयं वनं जनकनन्दिनि।
वचनं तन्नयति मां पितुः सत्योपबृंहितम्॥ १३९॥
एष धर्मश्च सुश्रोणि पितुर्मातुश्च वश्यता।
आज्ञां चाहं व्यतिक्रम्य नाहं जीवितुमुत्सहे॥ १४०॥
अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते।
स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरुम्॥ १४१॥
यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पवित्रं तत्समं भुवि।
नान्यदस्ति शुभापाङ्गे तेनेदमभिराध्यते॥ १४२॥
न सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्यासदक्षिणः।
तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता॥ १४३॥
स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्या पुत्राः सुखानि च।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किंचिदपि दुर्लभम्॥ १४४॥
देवगन्धर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकांस्तथापरान्।
प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः॥ १४५॥

स मां पिता यथा शास्ति सत्यधर्मपथे स्थितः।
तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः॥ १४६॥
मम सन्ना मतिः सीते नेतुं त्वां दण्डकावनम्।
वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता॥ १४७॥
सा हि दिष्टानवद्याङ्गि वनाय मदिरेक्षणे।
अनुगच्छस्व मां भीरु सहधर्मचरी भव॥ १४८॥
सर्वथा सदृशं सीते मम स्वस्य कुलस्य च।
व्यवसायमनुक्रान्ता कान्ते त्वमतिशोभनम्॥ १४९
आरभस्व शुभश्रोणि वनवासक्षमाः क्रियाः।
नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते॥ १५०॥
ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम्।
देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्व च मा चिरम्॥ १५१॥
भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च।
रमणीयाश्च ये केचित्क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः॥ १५२॥
शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च।
देहि स्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम्॥ १५३॥
अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः।
क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे॥ १५४॥

(भ्राता लक्ष्मणः)

एवं श्रुत्वा स संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः।
वाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन्॥ १॥
स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः।
सीतामुवाचातियशां राघवं च महाव्रतम्॥ २॥
यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम्।
अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः॥ ३॥

मया समेतोऽरण्यानि रम्याणि विचरिष्यसि ।
पक्षिभिर्भृङ्गयूथैश्च संघुष्टानि समन्ततः ॥ ४ ॥
न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना ॥ ५ ॥
एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः ।
रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत् ॥ ६ ॥
अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् ।
किमिदानीं पुनरपि क्रियते मे निवारणम् ॥ ७ ॥
यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते गन्तुमिच्छतः ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं संशयो हि ममानघ ॥ ८ ॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रतः ।
स्थितं प्राग्गामिनं धीरं याचमानं कृताञ्जलिम् ॥ ९ ॥
स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे ॥ १० ॥
मयाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम् ।
को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ॥ ११ ॥
अभिवर्षति कामैर्यः पर्जन्यः पृथिवीमिव ।
स कामपाशपर्यस्तो महातेजा महीपतिः ॥ १२ ॥
सा हि राज्यमिदं प्राप्य नृपस्याश्वपतेः सुता ।
दुःखितानां सपत्नीनां न करिष्यति शोभनम् ॥ १३ ॥
न स्मरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां च सुदुःखिताम् ।
भरतो राज्यमासाद्य कैकेय्यां पर्यवस्थितः ॥ १४ ॥
तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा ।
सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुं चर ॥ १५ ॥
एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता ।
धर्मज्ञगुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ॥ १६ ॥

एवं कुरुष्व सौमित्रे मत्कृते रघुनन्दन ।
अस्माभिर्विप्रहीणाया मातुर्नो न भवेत्सुखम् ॥ १७ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥ १८ ॥
तवैव तेजसा वीर भरतः पूजयिष्यति ।
कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नास्ति संशयः ॥ १९ ॥
यदि दुःस्थो न रक्षेत भरतो राज्यमुत्तमम् ।
प्राप्य दुर्मनसा वीर गर्वेण च विशेषतः ॥ २० ॥
तमहं दुर्मतिं क्रूरं वधिष्यामि न संशयः ।
तत्पक्षानपि तान्सर्वांस्त्रैलोक्यमपि किं तु सा ॥ २१ ॥
कौसल्या बिभृयादार्या सहस्रं मद्विधानपि ।
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां संप्राप्तमुपजीविनाम् ॥ २२ ॥
तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैव च ।
पर्याप्ता मद्विधानां च भरणाय मनस्विनी ॥ २३ ॥
कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते ।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते ॥ २४ ॥
धनुरादाय सगुणं खनित्रपिटकाधरः ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं तव दर्शयन् ॥ २५ ॥
आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च ।
वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम् ॥ २६ ॥
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते ।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥ २७ ॥
रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम् ।
व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ॥ २८ ॥
ये च राज्ञो ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम् ।
जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने ॥ २९ ॥

अभेद्ये कवचे दिव्ये तूणी चाक्षय्यसायकौ ।
आदित्यविमलाभौ द्वौ खड्गौ हेमपरिष्कृतौ ॥ ३० ॥
सत्कृत्य निहितं सर्वमेतदाचार्यसद्मनि ।
सर्वमायुधमादाय क्षिप्रमाव्रज लक्ष्मण ॥ ३१ ॥
स सुहृज्जनमामन्त्र्य वनवासाय निश्चितः ।
इक्ष्वाकुगुरुमागम्य जग्राहायुधमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
तद्दिव्यं राजशार्दूलः सत्कृतं माल्यभूषितम् ।
रामाय दर्शयामास सौमित्रिः सर्वमायुधम् ॥ ३३ ॥

दशरथः

दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु ।
जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ ॥ १ ॥
ततो गृहीते प्रेष्याभ्यामशोभेतां तदायुधे ।
मालादामभिरासक्ते सीतया समलंकृते ॥ २ ॥
ततः प्रासादहर्म्याणि विमानशिखराणि च ।
अभिरुह्य जनः श्रीमानुदासीनो व्यलोकयत् ॥ ३ ॥
न हि रथ्याः सुशक्यन्ते गन्तुं बहुजनाकुलाः ।
आरुह्य तस्मात्प्रासादाद्दीनाः पश्यन्ति राघवम् ॥ ४ ॥
पदातिं सानुजं दृष्ट्वा ससीतं च जनास्तदा ।
ऊचुर्बहुजना वाचः शोकोपहतचेतसः ॥ ५ ॥
यं यान्तमनुयाति स्म चतुरङ्गबलं महत् ।
तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मणः ॥ ६ ॥
ऐश्वर्यस्य रसज्ञः सन् कामानां चाकरो महान् ।
नेच्छत्येवानृतं कर्तुं वचनं धर्मगौरवात् ॥ ७ ॥
या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि ।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥ ८ ॥

अङ्गरागोचितां सीतां रक्तचन्दनसेविनीम् ।
वर्षमुष्णं च शीतं च नेष्यत्याशु विवर्णताम् ॥ ९ ॥
अद्य नूनं दशरथः सत्त्वमाविश्य भाषते ।
नहि राजा प्रियं पुत्रं विवासयितुमर्हति ॥ १० ॥
निर्गुणस्यापि पुत्रस्य कथं स्याद्विनिवासनम् ।
किं पुनर्यस्य लोकोऽयं जितो वृत्तेन केवलम् ॥ ११ ॥
आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः ।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥ १२ ॥
तस्मात्तस्योपघातेन प्रजाः परमपीडिताः ।
औदकानीव सत्त्वानि ग्रीष्मे सलिलसंक्षयात् ॥ १३ ॥
पीडया पीडितं सर्वं जगदस्य जगत्पतेः ।
मूलस्येवोपघातेन वृक्षः पुष्पफलोपगः ॥ १४ ॥
मूलं ह्येष मनुष्याणां धर्मसारो महाद्युतिः ।
पुष्पं फलं च पत्रं च शाखाश्चास्येतरे जनाः ॥ १५ ॥
ते लक्ष्मण इव क्षिप्रं सपत्न्यः सहबान्धवाः ।
गच्छन्तमनुगच्छामो येन गच्छति राघवः ॥ १६ ॥
उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च ।
एकदुःखसुखा राममनुगच्छाम धार्मिकम् ॥ १७ ॥
समुद्धृतनिधानानि परिध्वस्ताजिराणि च ।
उपात्तधनधान्यानि हृतसाराणि सर्वशः ॥ १८ ॥
रजसाभ्यवकीर्णानि परित्यक्तानि दैवतैः ।
मूषकैः परिधावद्भिरुद्बिलैरावृतानि च ॥ १९ ॥
अपेतोदकधूमानि हीनसंमार्जनानि च ।
प्रणष्टबलिकर्मेज्यामन्त्रहोमजपानि च ॥ २० ॥
दुष्कालेनेव भग्नानि भिन्नभाजनवन्ति च ।
अस्मत्त्यक्तानि कैकेयी वेश्मानि प्रतिपद्यताम् ॥ २१ ॥

वनं नगरमेवास्तु येन गच्छति राघवः ।
अस्माभिश्च परित्यक्तं पुरं संपद्यतां वनम् ॥ २२ ॥
बिलानि दंष्ट्रिणः सर्वे सानूनि मृगपक्षिणः ।
त्यजन्त्वस्मद्भयाद्भीता गजाः सिंहा वनान्यपि ॥ २३ ॥
अस्मत्यक्तं प्रपद्यन्तु सेव्यमानं त्यजन्तु च ।
तृणमांसफलादानं देशं व्यालमृगद्विजम् ॥ २४ ॥
प्रपद्यतां हि कैकेयी सपुत्रा सह बान्धवैः ।
राघवेण वयं सर्वे वने वत्स्याम निर्वृताः ॥ २५ ॥
इत्येवं विविधा वाचो नानाजनसमीरिताः ।
शुश्राव राघवः श्रुत्वा न विचक्रेऽस्य मानसम् ॥ २६ ॥
स तु वेश्म पुनर्मातुः कैलासशिखरप्रभम् ।
अभिचक्राम धर्मात्मा मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २७ ॥
स राजा पुत्रमायान्तं दृष्ट्वा चारात्कृताञ्जलिम् ।
उत्पपातासनात्तूर्णमार्तः स्त्रीजनसंवृतः ॥ २८ ॥
सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशांपतिः ।
तमसंप्राप्य दुःखार्तः पपात भुवि मूर्छितः ॥ २९ ॥
तं रामोऽभ्यपतत्क्षिप्रं लक्ष्मणश्च महारथः ।
विसंज्ञमिव दुःखेन सशोकं नृपतिं तदा ॥ ३० ॥
तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
पर्यङ्के सीतया सार्धं रुदन्तः समवेशयन् ॥ ३१ ॥
अथ रामो मुहूर्तस्य लब्धसंज्ञं महीपतिम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्बाष्पशोकार्णवपरिप्लुतः ॥ ३२ ॥
आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः ।
प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम् ॥ ३३ ॥
लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेतु मां वनम् ।
कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः ॥ ३४ ॥

अनुजानीहि सर्वान्नः शोकमुत्सृज्य मानद ।
लक्ष्मणं मां च सीतां च प्रजापतिरिवात्मजान् ॥ ३५ ॥
प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः ।
उवाच राजा संप्रेक्ष्य वनवासाय राघवम् ॥ ३६ ॥
अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः ।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम् ॥ ३७ ॥
एवमुक्तो नृपतिना रामो धर्मभृतां वरः ।
प्रत्युवाचाञ्जलिं कृत्वा पितरं वाक्यकोविदः ॥ ३८ ॥
भवान्वर्षसहस्राय पृथिव्या नृपते पतिः ।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे राज्यस्य कांक्षिता ॥ ३९ ॥
नव पञ्च च वर्षाणि वनवासे विहृत्य ते ।
पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिप ॥ ४० ॥
रुदन्नार्तः प्रियं पुत्रं सत्यपाशेन संयुतः ।
कैकेय्या चोद्यमानस्तु मिथो राजा तमब्रवीत् ॥ ४१ ॥
श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च ।
गच्छस्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ॥ ४२ ॥
नहि सत्यात्मनस्तात धर्माभिमनसस्तव ।
संनिवर्तयितुं बुद्धिः शक्यते रघुनन्दन ॥ ४३ ॥
अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा ।
एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम् ॥ ४४ ॥
मातरं मां च सम्पश्यन् वसेमामद्य शर्वरीम् ।
तर्पितः सर्वकामैस्त्वं श्वः काल्ये साधयिष्यसि ॥ ४५ ॥
दुष्करं क्रियते पुत्र सर्वथा राघव प्रिय ।
त्वया हि मत्प्रियार्थं तु वनमेवमुपाश्रितम् ॥ ४६ ॥
न चैतन्मे प्रियं पुत्र शपे सत्येन राघव ।
छन्नया चलितस्त्वासि स्त्रिया भस्माग्निकल्पया ॥ ४७ ॥

वञ्चना या तु लब्धा मे तां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि ।
अनया वृत्तसादिन्या कैकेय्याभिप्रचोदितः ॥ ४८ ॥
न चैतदाश्चर्यतमं यस्त्वं ज्येष्ठः सुतो मम ।
अपानृतकथं पुत्र पितरं कर्तुमिच्छसि ॥ ४९ ॥
अथ रामस्तदा श्रुत्वा पितुरार्तस्य भाषितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्राता दीनो वचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥
प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्को मे श्वस्तान्प्रदास्यति ।
अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे ॥ ५१ ॥
इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्यसमाकुला ।
मया विसृष्टा वसुधा भरताय प्रदीयताम् ॥ ५२ ॥
वनवासकृता बुद्धिर्न च मेऽद्य चलिष्यति ।
यस्तु युद्धे वरो दत्तः कैकेय्यै वरद त्वया ॥ ५३ ॥
दीयतां निखिलेनैव सत्यस्त्वं भव पार्थिव ।
अहं निदेशं भवतो यथोक्तमनुपालयन् ॥ ५४ ॥
चतुर्दश समा वत्स्ये वने वनचरैः सह ।
मा विमर्शो वसुमती भरताय प्रदीयताम् ॥ ५५ ॥
नहि मे काङ्क्षितं राज्यं सुखमात्मनि वा प्रियम् ।
यथानिदेशं कर्तुं वै तवैव रघुनन्दन ॥ ५६ ॥
अपगच्छतु ते दुःखं मा भूर्बाष्पपरिप्लुतः ।
नहि क्षुभ्यति दुर्धर्षः समुद्रः सरितां पतिः ॥ ५७ ॥
नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मेदिनीम् ।
नैव सर्वानिमान्कामान्न स्वर्गं न च जीवितुम् ॥ ५८ ॥
त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ ।
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च ते शपे ॥ ५९ ॥
न च शक्यं मया तात स्थातुं क्षणमपि प्रभो ।
स शोकं धारयस्वेमं नहि मेऽस्ति विपर्ययः ॥ ६० ॥

अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव ।
मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये ॥ ६१ ॥
मा चोत्कण्ठां कृथा देव वने रंस्यामहे वयम् ।
प्रशान्तहरिणाकीर्णे नानाशकुनिनादिते ॥ ६२ ॥
पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम् ।
तस्माद्दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः ॥ ६३ ॥
चतुर्दशसु वर्षेषु गतेषु नृपसत्तम ।
पुनर्द्रक्ष्यसि मां प्राप्तं सन्तापोऽयं विमुच्यताम् ॥ ६४ ॥
येन संस्तम्भनीयोऽयं सर्वो बाष्पकलो जनः ।
स त्वं पुरुषशार्दूल किमर्थं विक्रियां गतः ॥ ६५ ॥
पुरं च राष्ट्रं च मही च केवला
मया विसृष्टा भरताय दीयताम् ।
अहं निदेशं भवतोऽनुपालय-
न्वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम् ॥ ६६ ॥
मया विसृष्टां भरतो महीमिमां
सशैलखण्डां सपुरोपकाननाम् ।
शिवासु सीमास्वनुशास्तु केवलं
त्वया यदुक्तं नृपते तथास्तु तत् ॥ ६७ ॥
न मे तथा पार्थिव दीयते मनो
महत्सु कामेषु न चात्मनः प्रिये ।
यथा निदेशे तव शिष्टसम्मते
व्यपैतु दुःखं तव मत्कृतेऽनघ ॥ ६८ ॥
तदद्य नैवानघ राज्यमव्ययं
न सर्वकामान्वसुधां न मैथिलीम् ।
न चिन्तितं त्वामनृतेन योजयन्
वृणीय सत्यं व्रतमस्तु ते तथा ॥ ६९ ॥

फलानि मूलानि च भक्षयन्वने
गिरींश्च पश्यन्सरितः सरांसि च ।
वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं
सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः ॥ ७० ॥

एवं स राजा व्यसनाभिपन्न-
स्तापेन दुःखेन च पीड्यमानः ।
आलिङ्ग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो
भूमिं गतो नैव चिचेष्ट किंचित् ॥ ७१ ॥

देव्यः समस्ता रुरुदुः समेता-
स्तां वर्जयित्वा नरदेवपत्नीम् ।
रुदन्सुमन्त्रोऽपि जगाम मूर्छां
हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम् ॥ ७२ ॥

सबाष्पं निःश्वस्य राजा जगादेदं पुनर्वचः ।
सूत रत्नसुसंपूर्णा चतुर्विधबला चमूः ॥
राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम् ॥ ७३ ॥

ये चैनमुपजीवन्ति रमते यैश्च वीर्यतः ।
तेषां बहुविधं दत्त्वा तानप्यत्र नियोजय ॥ ७४ ॥

आयुधानि च मुख्यानि नागराः शकटानि च ।
अनुगच्छन्तु काकुत्स्थं व्याधाश्चारण्यकोविदाः ॥ ७५ ॥

धान्यकोशश्च यः कश्चिद्धनकोशश्च मामकः ।
तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने ॥ ७६ ॥

यजन्पुण्येषु देशेषु विसृजंश्चाप्तदक्षिणाः ।
ऋषिभिश्चापि संगम्य प्रवत्स्यति सुखं वने ॥ ७७ ॥

भरतश्च महाबाहुरयोध्यां पालयिष्यति ।
सर्वकामैः पुनः श्रीमान्रामः संसाध्यतामिति ॥ ७८ ॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे कैकेय्या भयमागतम् ।
मुखं चाप्यगमच्छोषं स्वरश्चापि व्यरुध्यत ॥ ७६ ॥
एवंविधं वचः श्रुत्वा रामो दशरथं तदा ।
अभ्यभाषत वाक्यं तु विनयज्ञो विनीतवत् ॥ ८० ॥
त्यक्तभोगस्य मे राजन्वने वन्येन जीवतः ।
किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसङ्गस्य सर्वतः ॥ ८१ ॥
यो हि दत्वा द्विजश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः ।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ॥ ८२ ॥
तथा मम सतां श्रेष्ठ किं ध्वजिन्या जगत्पते ।
सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे ॥ ८३ ॥
खनित्रपिटके चोभे समानयत गच्छत ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वसतो मम ॥ ८४ ॥

चीरपरिधानम्

अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम् ।
उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा ॥ १ ॥
स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः प्रतिगृह्य ते ।
सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥ २ ॥
लक्ष्मणश्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे ।
तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः ॥ ३ ॥
अथात्मपरिधानार्थे सीता कौशेयवासिनी ।
संप्रेक्ष्य चीरं संत्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥ ४ ॥
सा व्यपत्रपमाणेव प्रगृह्य च सुदुर्मनाः ।
कैकेय्याः कुशचीरे ते जानकी शुभलक्षणा ॥ ५ ॥
अश्रुसंपूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी ।
गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः ।
इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥
कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना ।
तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीडिता जनकात्मजा ॥ ८ ॥
तस्यास्तत्क्षिप्रमागत्य रामो धर्मभृतां वरः ।
चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥ ९ ॥
रामं प्रेक्ष्य तु सीताया बध्नन्तं चीरमुत्तमम् ।
अन्तःपुरचरा नार्यो मुमुचुर्वारि नेत्रजम् ॥ १० ॥
चीरे गृहीते तु तया सबाष्पो नृपतेर्गुरुः ।
निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥
अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि कुलपांसनि ।
वञ्चयित्वा तु राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसि ॥ १२ ॥
न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते ।
अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम् ॥ १३ ॥
आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् ।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ॥ १४ ॥
अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण संगता ।
वयमत्रानुयास्यामः पुरं चेदं गमिष्यति ॥ १५ ॥
अन्तपालाश्च यास्यन्ति सदारो यत्र राघवः ।
सहोपजीव्यं राष्ट्रं च पुरं च सपरिच्छदम् ॥ १६ ॥
न हि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः ।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ॥ १७ ॥
भरतश्च सशत्रुघ्नश्चीरवासा वनेचरः ।
वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम् ॥ १८ ॥
यद्यपि त्वं क्षितितलाद्गगनं चोत्पतिष्यसि ।
पितृवंशचरित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति ॥ १९ ॥

अथोत्तमान्याभरणानि देवि
देहि स्नुषायै व्यपनीय चीरम् ।
न चीरमस्याः प्रविधीयतेति
न्यवारयत्तद्वसनं वसिष्ठः ॥ २० ॥

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये
गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे ।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा
प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा ॥ २१ ॥

तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्यामनाथवत् ।
प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक्त्वां दशरथं त्विति ॥ २२ ॥

तेन तत्र प्रणादेन दुःखितः स महीपतिः ।
चिच्छेद जीविते श्रद्धां धर्मे यशसि चात्मनः ॥ २३ ॥

स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत् ।
कैकेयि कुशचीरेण न सीता गन्तुमर्हति ॥ २४ ॥

सुकुमारी च बाला च सततं च सुखोचिता ।
नेयं वनस्य योग्येति सत्यमाह गुरुर्मम ॥ २५ ॥

इयं हि कस्यापकरोति किंचित्
तपस्विनी राजवरस्य पुत्री ।
या चीरमासाद्य वनस्य मध्ये
जाता विसंज्ञा श्रमणीव काचित् ॥ २६ ॥

चीराण्यपास्याज्जनकस्य कन्या
नेयं प्रतिज्ञा मम दत्तपूर्वा ।
यथासुखं गच्छतु राजपुत्री
वनं समग्रा सह सर्वरत्नैः ॥ २७ ॥

अजीवनार्हेण मया नृशंसा
कृता प्रतिज्ञा नियमेन तावत् ।

त्वया हि बाल्यात्प्रतिपन्नमेतत्
तन्मा दहेद्वेणुमिवात्मपुष्पम् ॥ २८ ॥
रामेण यदि ते पापे किंचित्कृतमशोभनम् ।
अपकारः क इह ते वैदेह्या दर्शितोऽधमे ॥ २९ ॥
मृगीवोत्फुल्लनयना मृदुशीला मनस्विनी ।
अपकारं कमिव ते करोति जनकात्मजा ॥ ३० ॥
ननु पर्याप्तमेवं ते पापे रामविवासनम् ।
किमेभिः कृपणैर्भूयः पातकैरपि ते कृतैः ॥ ३१ ॥
प्रतिज्ञातं मया तावत्त्वयोक्तं देवि शृण्वता ।
रामं यदभिषेकाय त्वमिहागतमब्रवीः ॥ ३२ ॥
तत्त्वेतत्समतिक्रम्य निरयं गन्तुमिच्छसि ।
मैथिलीमपि या हि त्वमीक्षसे चीरवासिनीम् ॥ ३३ ॥
इतीव राजा विलपन्महात्मा
शोकस्य नान्तं स ददर्श किंचित् ।
भृशातुरत्वाच्च पपात भूमौ
तेनैव पुत्रव्यसने निमग्नः ॥ ३४ ॥
एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः संप्रस्थितो वनम् ।
अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
इयं धार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी ।
वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देव गर्हते ॥ ३६ ॥
मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम् ।
अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः संमन्तुमर्हसि ॥ ३७ ॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम् ।
समीक्ष्य सह भार्याभी राजा विगतचेतनः ॥ ३८ ॥
नैनं दुःखेन संतप्तः प्रत्यवैक्षत राघवम् ।
न चैनमभिसंप्रेक्ष्य प्रत्यभाषत दुर्मनाः ॥ ३९ ॥

स मुहूर्तमिवासंज्ञो दुःखितश्च महीपतिः ।
विललाप महाबाहू राममेवानुचिन्तयन् ॥ ४० ॥
मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः ।
प्राणिनो हिंसिता वापि तन्मामिदमुपस्थितम् ॥ ४१ ॥
न त्वेवानागते काले देहाच्च्यवति जीवितम् ।
कैकेय्या क्लिश्यमानस्य मृत्युर्मम न विद्यते ॥ ४२ ॥
योऽहं पावकसंकाशं पश्यामि पुरतः स्थितम् ।
विहाय वसने सूक्ष्मे तापसाच्छादमात्मजम् ॥ ४३ ॥
एकस्याः खलु कैकेय्याः कृतेऽयं खिद्यते जनः ।
स्वार्थे प्रयतमानायाः संश्रित्य निकृतिं त्विमाम् ॥ ४४ ॥
एवमुक्त्वा तु वचनं बाष्पेण विहतेन्द्रियः ।
रामेति सकृदेवोक्त्वा व्याहर्तुं न शशाक सः ॥ ४५ ॥
संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्तात्स महीपतिः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ४६ ॥
औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः ।
प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात्परम् ॥ ४७ ॥
एवं मन्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते ।
पित्रा मात्रा च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम् ॥ ४८ ॥
राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः ।
योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलंकृतम् ॥ ४९ ॥
तं रथं राजपुत्राय सूतः कनकभूषितम् ।
आचचक्षेऽञ्जलिं कृत्वा युक्तं परमवाजिभिः ॥ ५० ॥
राजा सत्वरमाहूय व्यापृतं वित्तसंचये ।
उवाच देशकालज्ञो निश्चितं सर्वतः शुचिः ॥ ५१ ॥
वासांसि च वरार्हाणि भूषणानि महान्ति च ।
वर्षाण्येतानि संख्याय वैदेह्याः क्षिप्रमानय ॥ ५२ ॥

नरेन्द्रेणैवमुक्तस्तु गत्वा कोशगृहं ततः ।
प्रायच्छत्सर्वमाहृत्य सीतायै क्षिप्रमेव तत् ॥ ५३ ॥
सा सुजाता सुजातानि वैदेही प्रस्थिता वनम् ।
भूषयामास गात्राणि तैर्विचित्रैर्विभूषणैः ॥ ५४ ॥
व्यराजयत वैदेही वेश्म तत्सुविभूषिता ।
उद्यतोऽशुमतः काले खं प्रभेव विवस्वतः ॥ ५५ ॥
तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत् ।
अनाचरन्तीं कृपणं मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम् ॥ ५६ ॥
असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन्सततं सत्कृताः प्रियैः ।
भर्त्तारं नाभिमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः ॥ ५७ ॥
एष स्वभावो नारीणामनुभूय पुरा सुखम् ।
अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि ॥ ५८ ॥
असत्यशीला विकृता दुर्गा अहृदयाः सदा ।
असत्यः पापसंकल्पाः क्षणमात्रविरागिणः ॥ ५९ ॥
न कुलं न कृतं विद्यां न दत्तं नापि संग्रहः ।
स्त्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः ॥ ६० ॥
साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते ।
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥ ६१ ॥
स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् ।
तव देवसमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा ॥ ६२ ॥
विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम् ।
कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता ॥ ६३ ॥
करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम् ।
अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे ॥ ६४ ॥
न मामसज्जनेनार्या समानयितुमर्हति ।
धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥ ६५ ॥

नातन्त्री विद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः ।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥ ६६ ॥
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ ६७ ॥
साहमेवंगता श्रेष्ठा श्रुतधर्मपरावरा ।
आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिया भर्ता हि दैवतम् ॥ ६८ ॥
सीताया वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयंगमम् ।
शुद्धसत्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम् ॥ ६९ ॥
तां प्राञ्जलिरभिप्रेक्ष्य मातृमध्येऽतिसत्कृताम् ।
रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७० ॥
अम्ब मा दुःखिता भूत्वा पश्येस्त्वं पितरं मम ।
क्षयोऽपि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ ७१ ॥
सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नव वर्षाणि पञ्च च ।
समग्रमिह सम्प्राप्तं मां द्रक्ष्यसि सुहृद्वृतम् ॥ ७२ ॥

——:o:——

वनगमनम् ।

अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
उपसंगृह्य राजानं चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥
तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञः सह सीतया ।
राघवः शोकसम्मूढो जननीमभ्यवादयत् ॥ २ ॥
अन्वक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत् ।
अपि मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः ॥ ३ ॥
तं वन्दमानं रुदती माता सौमित्रिमब्रवीत् ।
हितकामा महाबाहुं मूर्ध्न्युपाघ्राय लक्ष्मणम् ॥ ४ ॥
सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥ ५ ॥

व्यसनी वा समृद्धो गतिरेष तवानघ ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥ ६ ॥
इदं हि वृत्तमुचितं कुलास्यास्य सनातनम् ।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि ॥ ७ ॥
लक्ष्मणं त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवम् ।
सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम् ॥ ८ ॥
रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥ ९ ॥
ततः सुमन्त्रः काकुत्स्थं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
विनीतो विनयज्ञश्च मातलिर्वासवं यथा ॥ १० ॥
रथमारोह भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।
क्षिप्रं त्वां प्रापयिष्यामि यत्र मां राम वक्ष्यसे ॥ ११ ॥
तं रथं सूर्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा ।
आरुरोह वरारोहा कृत्वालङ्कारमात्मनः ॥ १२ ॥
वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च ।
भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वशुरो ददौ ॥ १३ ॥
तथैवायुधजातानि भ्रातृभ्यां कवचानि च ।
रथोपस्थे प्रविन्यस्य सचर्म कठिनं च यत् ॥ १४ ॥
अथ ज्वलनसंकाशं चामीकरविभूषितम् ।
तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १५ ॥
सीतातृतीयानारूढान्दृष्ट्वा रथमचोदयत् ।
सुमन्त्रः संमतानश्वान्वायुवेगसमाञ्जवे ॥ १६ ॥
ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता ।
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा ॥ १७ ॥
पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः ।
बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे तमूचुर्भृशनिःस्वनाः ॥ १८ ॥

संयच्छ वाजिनां रश्मीन्सूत याहि शनैः शनैः ।
मुखं द्रक्ष्याम रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति ॥ १९ ॥
आयसं हृदयं नूनं राममातुरसंशयम् ।
यद्देवगर्भप्रतिमे वनं याति न भिद्यते ॥ २० ॥
कृतकृत्या हि वैदेही छायेवानुगता पतिम् ।
न जहाति रता धर्मे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ २१ ॥
अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम् ।
भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ॥ २२ ॥
महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान् ।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ॥ २३ ॥
एवं वदन्तस्ते सोढुं न शेकुर्बाष्पमागतम् ।
नरास्तमनुगच्छन्ति प्रियमिक्ष्वाकुनन्दनम् ॥ २४ ।
अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः ।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन्गृहात् ॥ २५ ॥
शुश्रुवे चाग्रतः स्त्रीणां रुदतीनां महास्वनः ।
यथा नादः करेणूनां बद्धे महति कुञ्जरे ॥ २६ ॥
पिता हि राजा काकुत्स्थः श्रीमान्सन्नस्तदा बभौ ।
परिपूर्णः शशी काले ग्रहेणोपप्लुतो यथा ॥ २७ ॥
स च श्रीमानचिन्त्यात्मा रामो दशरथात्मजः ।
सूतं संचोदयामास त्वरितं वाह्यतामिति ॥ २८ ॥
रामो याहीति तं सूतं तिष्ठेति च जनस्तथा ।
उभयं नाशकत्सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः ॥ २९ ॥
निर्गच्छति महाबाहौ रामे पौरजनाश्रुभिः ।
पतितैरभ्यवहितं प्रणनाश महीरजः ॥ ३० ॥
रुदिताश्रुपरिद्यूनं हाहाकृतमचेतनम् ।
प्रयाणे राघवस्यासीत्पुरं परमपीडितम् ॥ ३१ ॥

सुस्राव नयनैः स्त्रीणामस्रमायाससंभवम् ।
मीनसंक्षोभचलितैः सलिलं पङ्कजैरिव ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम् ।
निपपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः ॥ ३३ ॥
ततो हलहलाशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठत. ।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृशदुःखितम् ॥ ३४ ॥
हा रामेति जनाः केचिद्राममातेति चापरे ।
अन्तःपुरसमृद्धं च क्रोशन्तं पर्यदेवयन् ॥ ३५ ॥
अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम् ।
राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि ॥ ३६ ॥
स बद्ध इव पाशेन किशोरो मातरं यथा ।
धर्मपाशेन संयुक्तः प्रकाशं नाभ्युदैक्षत ॥ ३७ ॥
पदातिनौ च यानार्हावदुःखार्हौ सुखोचितौ ।
दृष्ट्वा संचोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम् ॥ ३८ ॥
नहि तत्पुरुषव्याघ्रो दुःखजं दर्शनं पितुः ।
मातुश्च सहितुं शक्तस्तोत्त्रैर्नुन्न इव द्विपः ॥ ३९ ॥
प्रत्यगारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात् ।
बद्धवत्सा यथा धेनू राममाताभ्यधावत ॥ ४० ॥
तथा रुदन्तीं कौसल्यां रथं तमनुधावतीम् ।
क्रोशन्तीं राम रामेति हा सीते लक्ष्मणेति च ॥ ४१ ॥
तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहि याहीति राघवः ।
सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा ॥ ४२ ॥
नाश्रौषमिति राजानमुपालब्धोऽपि वक्ष्यसि ।
चिरं दुःखस्य पापिष्ठमिति रामस्तमब्रवीत् ॥ ४३ ॥
स रामस्य वचः कुर्वन्ननुज्ञाप्य च तं जनम् ।
व्रजतोऽपि हयाञ्शीघ्रं चोदयामास सारथिः ॥ ४४ ॥

न्यवर्तत जनो राज्ञो रामं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
मनसाप्याशुवेगेन न न्यवर्तत मानुषम् ॥ ४५ ॥
यमिच्छेत्पुनरायातं नैनं दूरमनुव्रजेत् ।
इत्यमात्या महाराजमूचुर्दशरथं वचः ॥ ४६ ॥
तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नः
प्रस्विन्नगात्रः प्रविषण्णरूपः ।
निशम्य राजा कृपणः सभार्यो
व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः ॥ ४७ ॥
यावत्तु निर्यतस्तस्य रजोरूपमदृश्यत ।
नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत्संजहारात्मचक्षुषी ॥ ४८ ॥
न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः ।
तदार्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले ॥ ४९ ॥
तस्य दक्षिणमन्वागात्कौसल्या बाहुमङ्गना ।
परं चास्यान्वगात्पार्श्वं कैकेयी सा सुमध्यमा ॥ ५० ॥
तां नयेन च संपन्नो धर्मेण विनयेन च ।
उवाच राजा कैकेयीं समीक्ष्य व्यथितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥
कैकेयि मामकाङ्गानि मा स्प्राक्षीः पापनिश्चये ।
नहि त्वां द्रष्टुमिच्छामि न भार्या न च बान्धवी ॥ ५२ ॥
ये च त्वामनुजीवन्ति नाहं तेषां न ते मम ।
केवलार्थपरां हि त्वां त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम् ॥ ५३ ॥
अथ रेणुसमुद्ध्वस्तं समुत्थाप्य नराधिपम् ।
न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्शिता ॥ ५४ ॥

सीताहरणम् ।

हैममृगदर्शनम् ।

हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत्—
एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ।
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः ॥ १ ॥
स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ।
मृगो भूत्वाऽऽश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह ॥ २ ॥
स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ।
मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः ॥ ३ ॥
रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः ।
किंचिदत्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः ॥ ४ ॥
मधूकनिभपार्श्वश्च कञ्जकिञ्जल्कसंनिभः ।
वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः ॥ ५ ॥
इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ।
मनोहरस्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः ॥ ६ ॥
क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ।
वनं प्रज्वलयन् रम्यं रामाश्रमपदं च तत् ॥ ७ ॥
मनोहरं दर्शनीयं रूपं कृत्वा स राक्षसः ।
प्रलोभनार्थं वैदेह्या नानाधातुविचित्रितम् ॥ ८ ॥
विचरन्गच्छते शष्पं शाद्वलानि समन्ततः ।
रौप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियनन्दनः ॥ ९ ॥
विटपीनां किसलयान्भक्षयन्विचचार ह ।
कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः ॥ १० ॥
तमाश्रमं मन्दगतिः सीतासंदर्शनं ततः ।
राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः ॥ ११ ॥

रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ।
पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः॥ १२ ॥
गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते।
विक्रीडंश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति ॥ १३ ॥
आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ।
मृगयूथैरनुगतः पुनरेव निवर्तते ॥ १४ ॥
सीतादर्शनमाकाङ्क्षन्राक्षसो मृगतां गतः ।
परिभ्रमति चित्राणि मण्डलानि विनिष्पतन् ॥ १५ ॥
समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः ।
उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश ॥ १६ ॥
राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः ।
प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् ॥ १७ ॥
तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ।
कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत ॥ १८ ॥
कर्णिकारानशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणा ।
कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिरानना ॥ १९ ॥
अनर्हा वनवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम् ।
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना ॥ २० ॥
तं वै रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत ॥ २१ ॥
अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तं नानारत्नमयं मृगम् ।
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा ॥ २२ ॥
प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी ।
भर्तारमपि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम् ॥ २३ ॥
आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते ।
आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज ॥ २४ ॥

तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ॥ २५ ॥
शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ॥ २६ ॥
चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिना वने ।
अनेन निहता राम राजानः पापरूपिणा ॥ २७ ॥
अस्य मायाविदो माया मृगरूपमिदं कृतम् ।
भानुमत्पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसंनिभम् ॥ २८ ॥
मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव ।
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः ॥ २९ ॥
एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता ।
उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ॥ ३० ॥
आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः ।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥ ३१ ॥
न चान्यः सदृशो राजन्दृष्टः पूर्वं मृगो मया ।
तेजसा क्षमया दीप्त्या यथाऽयं मृगसत्तमः ॥ ३२ ॥
नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नभूतो ममाग्रतः ।
द्योतयन्वनमव्यग्रं द्योतते शशिसंनिभः ॥ ३३ ॥
अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपच्च शोभना ।
मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे ॥ ३४ ॥
यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव ।
आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥ ३५ ॥
समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः ।
अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति ॥ ३६ ॥
भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां च मम प्रभो ।
मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥ ३७ ॥

जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः ।
अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति ॥ ३८ ॥
निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि ।
शष्पवृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥ ३९ ॥
कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् ।
वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम ॥ ४० ॥
तेन काञ्चनरोम्णा तु मणिप्रवरशृङ्गिणा ।
तरुणादित्यवर्णेन नक्षत्रपथवर्चसा ॥
बभूव राघवस्यापि मनो विस्मयमागतम् ॥ ४१ ॥
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः ।
उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥ ४२ ॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लासितामिमाम् ।
रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥ ४३ ॥
न वने नन्दनोद्देशे न चैत्ररथसंश्रये ।
कुतः पृथिव्यां सौमित्रे योऽस्य कश्चित्समो मृगः ॥ ४४ ॥
प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः ।
शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकबिन्दुभिः ॥ ४५ ॥
पश्यास्य जृम्भमाणस्य दीप्तामग्निशिखोपमाम् ।
जिह्वां मुखान्निःसरन्तीं मेघादिव शतह्रदाम् ॥ ४६ ॥
मसारगल्लर्कमुखः शङ्खमुक्तानिभोदरः ।
कस्य नामानिरूप्योऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः ॥ ४७ ॥
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥ ४८ ॥
मांसहेतोरपि मृगान्विहारार्थं च धन्विनः ।
घ्नन्ति लक्ष्मण राजानो मृगयायां महावने ॥ ४९ ॥

एतस्य मृगरत्नस्य परार्ध्ये काञ्चनत्वचि ।
उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा ॥ ५० ॥
न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी ।
भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः ॥ ५१ ॥
एष चैव मृगः श्रीमान्यश्च दिव्यो नभश्चरः ।
उभावेतौ मृगौ दिव्यौ तारामृगमहीमृगौ ॥ ५२ ॥
यदि वायं तथा यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मण ।
मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ॥ ५३ ॥
एतेन हि नृशंसेन मारीचेनाकृतात्मना ।
वने विचरता पूर्वं हिंसिता मुनिपुङ्गवाः ॥ ५४ ॥
उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः ।
निहताः परमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयं मृगः ॥ ५५ ॥
इह त्वं भव सन्नद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ।
अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम् ॥ ५६ ॥
यावद्गच्छामि सौमित्रे मृगमानयितुं द्रुतम् ।
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या मृगत्वचि गतां स्पृहाम् ॥ ५७ ॥
त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ।
अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥ ५८ ॥
यावत्पृषतमेकेन सायकेन निहन्म्यहम् ।
हत्वैतच्चर्म चादाय शीघ्रमेष्यामि लक्ष्मण ॥ ५९ ॥
प्रदक्षिणेनातिबलेन पक्षिणा
जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण ।
भवाप्रमत्तः प्रतिगृह्य मैथिलीं
प्रतिक्षणं सर्वत एव शङ्कितः ॥ ६० ॥

रामानुगमनम् ।

तथा तु तं समुद्दिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः ।
दधारासिं महातेजाः जाम्बूनदमयत्सरुम् ॥ १ ॥
ततस्त्रिविनतं चापमादायात्मविभूषणम् ।
आवध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥
तं वन्यराजो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै ।
बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः संदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥
शङ्कितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् ।
दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित् ॥ ४ ॥
छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् ।
मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥ ५ ॥
दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् ।
स दूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ॥ ६ ॥
आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः ।
अथावतस्थे सुश्रान्तश्छायामाश्रित्य शाद्वले ॥ ७ ॥
स तमुन्मादयामास मृगरूपो निशाचरः ।
मृगैः परिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥
ग्रहीतुकामं दृष्ट्वा तं पुनरेवाभ्यधावत ।
तत्क्षणादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ ९ ॥
पुनरेव ततो दूराद्वृक्षखण्डाद्विनिःसृतः ।
दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः ॥ १० ॥
भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः ।
सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनः ॥ ११ ॥
संधाय सुदृढं चापे विकृष्य बलवद्बली ।
तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥ १२ ॥

मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् ।
स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः ॥ १३ ॥
मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसंनिभः ॥
तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत्स भृशातुरः ॥ १४ ॥
व्यनदद्भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः ।
म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥ १५ ॥
स्मृत्वा तद्वचनं रक्षो दध्यौ केन तु लक्ष्मणम् ।
इह प्रस्थापयेत्सीता तां शून्ये रावणो हरेत् ॥ १६ ॥
स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम् ।
सदृशं राघवस्यैव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥ १७ ॥
तेन मर्मणि निर्विद्धं शरेणानुपमेन हि ।
मृगरूपं तु तत्त्यक्त्वा राक्षसं रूपमास्थितः ॥ १८ ॥
चक्रे स सुमहाकायो मारीचो जीवितं त्यजन् ।
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् ॥ १९ ॥
रामो रुधिरसिक्ताङ्गं चेष्टमानं महीतले ।
जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन् ॥ २० ॥
मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्ता लक्ष्मणेन तु ।
तत्तथा ह्यभवच्चाद्य मारीचोऽयं मया हतः ॥ २१ ॥
हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम् ।
ममार राक्षसः; सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥ २२ ॥
लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति ।
इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥ २३ ॥
तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम् ।
राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम् ॥ २४ ॥
निहत्य पृषतं चान्यं मांसमादाय राघवः ।
त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा ॥ २५ ॥

लक्ष्मणानुगमनम्

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥ १ ॥
नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वावतिष्ठते।
क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥ २ ॥
आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि।
तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥ ३ ॥
रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम्।
न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् ॥ ४ ॥
तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा।
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् ॥ ५ ॥
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥ ६ ॥
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्।
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ॥ ७ ॥
तेन तिष्ठसि विश्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम्।
किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् ॥ ८ ॥
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः।
एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव।
पन्नगासुरगन्धर्वदेवदानवराक्षसैः ॥ १० ॥
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः।
देवि देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु पतत्रिषु ॥ ११ ॥
राक्षसेषु पिशाचेषु किन्नरेषु मृगेषु च।
दानवेषु च घोरेषु न स विद्येत शोभने ॥ १२ ॥

यो रामं प्रतियुध्येत समरे वासवोपमम्।
अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥
न त्वामस्मिन्वने हातुमुत्सहे राघवं विना।
अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि ॥ १४ ॥
त्रिभिर्लोकैः समुदितैः सेश्वरैः सामरैरपि।
हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु संतापस्त्यज्यतां तव ॥ १५ ॥
आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम्।
न स तस्य स्वरो व्यक्तं न कश्चिदपि दैवतः ॥ १६ ॥
गन्धर्वनगरप्रख्या माया तस्य च रक्षसः।
न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना ॥ १७ ॥
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे।
कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः ॥ १८ ॥
खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति।
राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने ॥ १९ ॥
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि।
लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु क्रुद्धा संरक्तलोचना ॥ २० ॥
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम्।
अनार्यकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन ॥ २१ ॥
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।
रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ॥ २२ ॥
नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत्।
त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥ २३ ॥
सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥ २४ ॥
तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा।
कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम् ॥ २५ ॥

उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम् ।
समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥
रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले ।
इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् ॥ २७ ॥
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः ।
उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ॥ २८ ॥
स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ।
विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः ॥ २६ ॥
न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे ।
श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसंनिभम् ॥ ३० ॥
उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः ।
न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया ॥ ३१ ॥
धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे ।
स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ॥ ३२ ॥
गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ।
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः ॥ ३३ ॥
निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ॥ ३४ ॥
लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥ ३५ ॥
गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण ।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥ ३६ ॥
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥ ३७ ॥
इति लक्ष्मणमाश्रुत्य सीता शोकसमन्विता ।
पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह ॥ ३८ ॥

तमार्तरूपां विमना रुदन्तीं
सौमित्रिरालोक्य विशालनेत्राम् ।
आश्वासयामास न चैव भर्तु-
स्तं भ्रातरं किंचिदुवाच सीता ॥ ३९ ॥

ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः
कृताञ्जलिः किंचिदभिप्रणम्य च ।
अवेक्षमाणो बहुशः स मैथिलीं
जगाम रामस्य समीपमात्मवान् ॥ ४० ॥

रावण-प्रवेशः ।

तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः ।
स विकाङ्क्षन्भृशं रामं प्रतस्थे न चिरादिव ॥ १ ॥
तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥
श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही ।
वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ॥ ३ ॥
परिव्राजकरूपेण वैदेहीमन्ववर्तत ।
तामाससादातिबलो भ्रातृभ्यां रहितां वने ॥ ४ ॥
रहितां सूर्यचन्द्राभ्यां संध्यामिव महत्तमः ।
तामपश्यत्ततो बालां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ॥ ५ ॥
रोहिणीं शशिना हीनां ग्रहवद्भृशदारुणः ।
तमुग्रं पापकर्माणं जनस्थानगता द्रुमाः ॥ ६ ॥
संदृश्य न प्रकम्पन्ते न प्रवाति च मारुतः ।
शीघ्रस्रोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षन्तं रक्तलोचनम् ॥ ७ ॥
स्तिमितं गन्तुमारेभे भयाद्गोदावरी नदी ।
रामस्य त्वन्तरं प्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदन्तरे ॥ ८ ॥

उपतस्थे च वैदेहीं भिक्षुरूपेण रावणः ।
अभव्यो भव्यरूपेण भर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥
अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः ।
सहसा भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ॥ १० ॥
अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं रामपत्नीं यशस्विनीम्—
शुभां रुचिरदन्तोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ ११ ॥
स तां पद्मपलाशाक्षीं पीतकौशेयवासिनीम् ।
अभ्यगच्छत वैदेहीं हृष्टचेता निशाचरः ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन् ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥ १३ ॥
रौप्यकाञ्चनवर्णाभे पीतकौशेयवासिनि ।
कमलानां शुभां मालां पद्मिनीव च बिभ्रती ॥ १४ ॥
ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने ।
भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ॥ १५ ॥
समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डुरा दशनास्तव ।
विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ॥ १६ ॥
विशालं जघनं पीनमूरू करिकरोपमौ ।
एतावुपचितौ वृत्तौ संहतौ संप्रगल्भितौ ॥ १७ ॥
पीनोन्नतमुखौ कान्तौ स्निग्धतालफलोपमौ ।
मणिप्रवेकाभरणौ रुचिरौ तौ पयोधरौ ॥ १८ ॥
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि ।
मनो हरसि मे रामे नदीकूलमिवाम्भसा ॥ १९ ॥
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किन्नरी ।
नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥ २० ॥

रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यं वयश्च ते ।
इह वासश्च कान्तारे चित्तमुन्माथयन्ति मे ॥ २१ ॥
सा प्रतिक्राम भद्रं ते न त्वं वस्तुमिहार्हसि ।
राक्षसानामयं वासो घोराणां कामरूपिणाम् ॥ २२ ॥
प्रसादाग्राणि रम्याणि नगरोपवनानि च ।
संपन्नानि सुगन्धीनि युक्तान्याचरितुं त्वया ॥ २३ ॥
वरं माल्यं वरं गन्धं वरं वस्त्रं च शोभने ।
भर्तारं च वरं मन्ये त्वद्युक्तमसितेक्षणे ॥ २४ ॥
का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा शुचिस्मिते ।
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ॥ २५ ॥
नेह गच्छन्ति गन्धर्वा न देवा न च किन्नराः ।
राक्षसानामयं वासः कथं तु त्वमिहागता ॥ २६ ॥
इह शाखामृगाः सिंहा द्वीपिव्याघ्रमृगा वृकाः ।
ऋक्षास्तरक्षवः कङ्काः कथं तेभ्यो न बिभ्यसे ॥ २७ ॥
मदान्वितानां घोराणां कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
कथमेका महारण्ये न बिभेषि वरानने ॥ २८ ॥
कासि कस्य कुतश्च त्वं किन्निमित्तं च दण्डकान् ।
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान् ॥ २९ ॥
इति प्रशस्ता वैदेही रावणेन महात्मना ।
द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् ॥ ३० ॥
सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ।
उपानीयासनं पूर्वं पाद्येनाभिनिमन्त्र्य च ॥ ३१ ॥

सीतारावणयो संवादः ।

रावणेन तु वैदेही तदा पृष्टा जिहीर्षुणा ।
परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥
ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम् ।
इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः ।
सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया ॥ ३ ॥
समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया ।
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम् ।
रुरून्गोधान्वराहांश्च हत्वाऽऽदायामिषं वहु ॥ ४ ॥
स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः ॥
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥ ५ ॥
एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः ।
प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
येन वित्रासिता लोकाः स देवासुरमानुषाः ।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥ ७ ॥
त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् ।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥ ८ ॥
वह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥ ९ ॥
लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी ।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥ १० ॥
तत्र सीते मया सार्द्धं वनेषु विचरिष्यसि ।
न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनी ॥ ११ ॥
पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः ।
सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि ॥ १२ ॥

रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा ।
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥ १३ ॥
महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् ।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥ १४ ॥
सर्वलक्षणसंपन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् ।
सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता ॥ १५ ॥
महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥ १६ ॥
पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम् ।
पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता ॥ १७ ॥
त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥ १८ ॥
पादपान्काञ्चनान्नूनं बहून्पश्यसि मन्दभाक् ।
राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि राक्षस ॥ १९ ॥
क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः ।
आशीविषस्य वदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ २० ॥
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि ।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान्गन्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥
अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम् ।
राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥ २२ ॥
अवसज्ज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि ।
सूर्यचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ।
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि ॥ २३ ॥
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ।
कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि ॥ २४ ॥

अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ।
रामस्य सदृशीं भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥ २५ ॥
यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने
यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः ।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥ २६ ॥
यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयो-
र्यदन्तरं चन्दनवारिपङ्कयोः ।
यदन्तरं हस्तिविडालयोर्वने
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥ २७ ॥
यदन्तरं वायसवैनतेययो-
र्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि ।
यदन्तरं हंसकगृध्रयोर्वने
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥ २८ ॥
एवं ब्रुवत्यां सीतायां संरब्धः परुषं वचः ।
ललाटे भ्रुकुटिं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ॥ २९ ॥
भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्नो वरवर्णिनि ।
रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
यस्य देवाः सगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः ।
विद्रवन्ति सदा भीता मृत्योरिव सदा प्रजाः ॥ ३१ ॥
येन वैश्रवणो भ्राता वैमात्रः कारणान्तरे ।
द्वंद्वमासादितः क्रोधाद्रणे विक्रम्य निर्जितः ॥ ३२ ॥
मद्भयार्तः परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ।
कैलासं पर्वतश्रेष्ठमध्यास्ते नरवाहनः ॥ ३३ ॥
यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम् ।
वीर्यादावर्जितं भद्रे येन यामि विहायसम् ॥ ३४ ॥

मम संजातरोषस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिलि ।
विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः ॥ ३५ ॥
यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारुतो वाति शङ्कितः ।
तीव्रांशुः शिशिरांशुश्च भयात्संपद्यते दिवि ॥ ३६ ॥
निष्कम्पपत्रास्तरवो नद्यश्च स्तिमितोदकाः ।
भवन्ति यत्र तत्राहं तिष्ठामि च चरामि च ॥ ३७ ॥
मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा ।
संपूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ३८ ॥
प्राकारेण परिक्षिप्ता पाण्डुरेण विराजिता ।
हेमकक्ष्या पुरी रम्या वैदूर्यमयतोरणा ३९ ॥
हस्त्यश्वरथसंबाधा तूर्यनादविनादिता ।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः संकुलोद्यानभूषिता ॥ ४० ॥
तत्र त्वं वस हे सीते राजपुत्रि मया सह ।
न स्मरिष्यसि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि ॥ ४१ ॥
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्दिव्यांश्च वरवर्णिनि ।
न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः ॥ ४२ ॥
अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः ।
तव भाग्येन संप्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि ॥ ४३ ॥
एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम् ॥ ४४ ॥
कथं वैश्रवणं देवं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि ॥ ४५ ॥
अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः ।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥ ४६ ॥
अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् ।
नहि रामस्य भार्यां मामानीय स्वस्तिमान्भवेत् ॥ ४७ ॥

जीवेच्चिरं वज्रधरस्य पश्चा-
च्छचीं प्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ।
न मादृशीं राक्षस धर्षयित्वा
पीतामृतस्यापि तवास्ति मोक्षः ॥ ४८ ॥

सीताहरणम् ।

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
हस्ते हस्तं समाहन्य चकार सुमहद्वपुः ॥ १ ॥
स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः ।
नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥
उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः ।
आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥ ३ ॥
अर्कं तुद्यां शरैस्तीक्ष्णैर्विभिन्द्यां हि महीतलम् ।
कामरूपेण उन्मत्ते पश्य मां कामरूपिणम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे ।
क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ ५ ॥
सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः ।
स्व रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥
संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनभूषणः ।
क्रोधेन महताविष्टो नीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥
दशास्यो विंशतिभुजो बभूव क्षणदाचरः ।
स परिव्राजकच्छद्म महाकायो विहाय तत् ॥ ८ ॥
प्रतिपेदे स्वकं रूपं रावणो राक्षसाधिपः ।
रक्ताम्बरधरस्तस्थौ स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥ ९ ॥
स तामसितकेशान्तां भास्करस्य प्रभामिव ।
वसनाभरणोपेतां मैथिलीं रावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

त्रिषु लोकेषु विख्यातं यदि भर्तारमिच्छसि ।
मामाश्रय वरारोहे तवाहं सदृशः पतिः ॥ ११ ॥
मां भजस्व चिराय त्वमहं श्लाघ्यः पतिस्तव ।
नैव चाहं क्वचिद्भद्रे करिष्ये तव विप्रियम् ॥ १२ ॥
त्यज्यतां मानुषो भावो मयि भावः प्रणीयताम् ।
राज्याच्च्युतमसिद्धार्थं रामं परिमितायुषम् ॥ १३ ॥
कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पण्डितमानिनि ।
यः स्त्रियो वचनाद्राज्यं विहाय ससुहृज्जनम् ॥ १४ ॥
अस्मिन्व्यालानुचरिते वने वसति दुर्मतिः ।
इत्युक्त्वा मैथिलीं वाक्यं प्रियार्हां प्रियवादिनीम् ॥ १५ ॥
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः ।
जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव ॥ १६ ॥
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः ।
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥ १७ ॥
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाभुजम् ।
प्राद्रवन्मृत्युसंकाशं भयार्ता वनदेवताः ॥ १८ ॥
स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः ।
प्रत्यदृश्यत हेमांगो रावणस्य महारथः ॥ १९ ॥
ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः ।
अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोहयत्तदा ॥ २० ॥
सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी ।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने ॥ २१ ॥
तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः ॥ २२ ॥
ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा ।
भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा ॥ २३ ॥

हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक ।
ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा ॥ २४ ॥
जीवितं सुखमर्थं च धर्महेतोः परित्यजन् ।
ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥ २५ ॥
ननु नामाविनीतानां विनेतासि परंतप ।
कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम् ॥ २६ ॥
ननु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।
कालोऽप्यङ्गी भवत्यत्र शस्यानामिव पक्तये ॥ २७ ॥
त्वं कर्म कृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ।
जीवितान्तकरं घोरं रामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥ २८ ॥
हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह ।
ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः ॥ २९ ॥
आमन्त्रये जनस्थानं कर्णिकारांश्च पुष्पितान् ।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥ ३० ॥
हंससारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम् ।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥ ३१ ॥
दैवतानि च यान्यस्मिन्वने विविधपादपे ।
नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत मां हृताम् ॥ ३२ ॥
यानि कानिचिदप्यत्र सत्त्वानि विविधानि च ।
सर्वाणि शरणं यामि मृगपक्षिगणानि वै ॥ ३३ ॥
ह्रियमाणां प्रियां भर्तुः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।
विवशा ते हृता सीता रावणेनेति शंसत ॥ ३४ ॥
विदित्वा तु महाबाहुरमुत्रापि महाबलः ।
आनेष्यति पराक्रम्य वैवस्वतहृतामपि ॥ ३५ ॥
सा तदा करुणावाचो विलपन्ती सुदुःखिता ।
वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना ॥ ३६ ॥

सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता ।
समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहितया गिरा ॥ ३७ ॥
जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् ।
अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ॥ ३८ ॥
नैष वारयितुं शक्यस्त्वया क्रूरो निशाचरः ।
सत्त्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः ॥ ३९ ॥
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम ।
लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ ४० ॥

जटायुः ।

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे ।
निरैक्षद्रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥ १ ॥
ततः पर्वतशृङ्गाभस्तीक्ष्णतुण्डः खगोत्तमः ।
वनस्पतिगतः श्रीमान्व्याजहार शुभां गिरम् ॥ २ ॥
दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रवः ।
भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि सांप्रतम् ॥ ३ ॥
जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ॥ ४ ॥
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः ।
तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ ५ ॥
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि ।
कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत् ॥ ६ ॥
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल ।
निवर्तय गतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ॥ ७ ॥
न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत् ।
यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥ ८ ॥

यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः ।
अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ९ ॥
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः ।
यस्य त्वं लोकनाथस्य हृत्वा भार्यां गमिष्यसि ॥ १० ॥
क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा ।
दहेद्दहनभूतेन वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ११ ॥
सर्पमाशीविषं बद्ध्वा वस्त्रान्ते नाववुध्यसे ।
ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि ॥ १२ ॥
स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत् ।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥ १३ ॥
यत् कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्तिर्न यशो ध्रुवम् ।
शरीरस्य भवेत् खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत् ॥ १४ ॥
वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी ।
न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि ॥ १५ ॥
न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः ।
हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥ १६ ॥
नहि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम् ।
सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥ १७ ॥
अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः ।
जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ॥ १८ ॥
तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण ।
वृन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात् ।
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ॥ १९ ॥
इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः ॥ २० ॥

स संप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन् महामृधे ।
बभूव वातोद्धुतयोर्मेघयोर्गगने यथा ॥ २१ ॥
तस्य तीक्ष्णनखाभ्यां तु चरणाभ्यां महाबलः ।
चकार बहुधा गात्रे व्रणान् पतगसत्तमः ॥ २२ ॥
अथ क्रोधाद्दशग्रीवो जग्राह दश मार्गणान् ।
मृत्युदण्डनिभान्घोराञ्छत्रोर्निधनकाङ्क्षया ॥ २३ ॥
स तैर्बाणैर्महावीर्यः पूर्णमुक्तैरजिह्मगैः ।
बिभेद निशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रं घोरैः शिलीमुखैः ॥ २४ ॥
स राक्षसरथे पश्यञ्जानकीं बाष्पलोचनाम् ।
अचिन्तयित्वा बाणांस्तान्राक्षसं समभिद्रवत् ॥ २५ ॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुक्तामणिविभूषितम् ।
चरणाभ्यां महातेजा बभञ्ज पतगोत्तमः ॥ २६ ॥
ततोऽन्यद्धनुरादाय रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
ववर्ष शरवर्षाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥
शरैरावारितस्तस्य संयुगे पतगेश्वरः ।
कुलायमभिसम्प्राप्तः पक्षिवच्च बभौ तदा ॥ २८ ॥
स तानि शरजालानि पक्षाभ्यां तु विधूय ह ।
चरणाभ्यां महातेजा बभञ्जास्य महद्धनुः ॥ २९ ॥
तच्चाग्निसदृशं दीप्तं रावणस्य शरावरम् ।
पक्षाभ्यां च महातेजा व्यधुनोत् पतगेश्वरः ॥ ३० ॥
काञ्चनोरश्छदान्दिव्यान् पिशाचवदनान्खरान् ।
तांश्चास्य जवसंपन्नाञ्जघान समरे बली ॥ ३१ ॥
अथ त्रिवेणुसंपन्नं कामगं पावकार्चिषम् ।
मणि-सोपान-चित्राङ्गं बभञ्ज च महारथम् ॥ ३२ ॥
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं छत्रं च व्यजनैः सह ।
पातयामास वेगेन ग्राहिभि राक्षसैः सह ॥ ३३ ॥

सारथेश्चास्य वेगेन तुण्डेन च महच्छिरः।
पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजो महाबलः॥ ३४॥
स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अङ्केनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः॥ ३५॥
निपपात भृशं पृष्ठे दशग्रीवस्य वीर्यवान्।
तं गृहीत्वा नखैस्तीक्ष्णैर्विददार समन्ततः॥ ३६॥
विददार नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन्।
केशांश्चोत्पाटयामास नखपक्षमुखायुधः॥ ३७॥
स तदा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः।
अमर्षस्फुरितोष्ठः सन्प्राकम्पत च राक्षसः॥ ३८॥
संपरिष्वज्य वैदेहीं वामेनाङ्केन रावणः।
तलेनाभिजघानार्तो जटायुं क्रोधमूर्च्छितः॥ ३९॥
जटायुस्तमतिक्रम्य तुण्डेनास्य खगाधिपः।
वामबाहून्दश तदा व्यपाहरदरिंदमः॥ ४०॥
संछिन्नबाहोः सद्यो वै बाहवः सहसाऽभवन्।
विषज्वालावलीमुक्ता वल्मीकादिव पन्नगाः॥ ४१॥
ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवाऽतुलवीर्ययोः।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च॥ ४२॥
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः।
पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत्॥ ४३॥
स च्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा।
निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः॥ ४४॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्।
अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता॥ ४५॥
तं नीलजीमूतनिकाशकल्पं
स पाण्डुरोरस्कमुदारवीर्यम्।

दद‍र्श लङ्काऽधिपतिः पृथिव्यां
जटायुषं शान्तमिवाग्निदावम् ॥ ४६ ॥
ततस्तु तं पत्ररथं महीतले
निपातितं रावणवेगमर्दितम् ।
पुनश्च संगृह्य शशिप्रभानना
रुरोद सीता जनकात्मजा तदा ॥ ४७ ॥

———:००:———

लङ्का-प्रापणम् ।

तमल्पजीवितं गृध्रं स्फुरन्तं राक्षसाधिपः ।
ददर्श भूमौ पतितं समीपे राघवाश्रमात् ॥ १ ॥
सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्य तम् ।
गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता ॥ २ ॥
न नूनं राम जानासि महद्व्यसनमात्मनः ।
धावन्ति नूनं काकुत्स्थ मदर्थं मृगपक्षिणः ॥ ३ ॥
अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः ।
शेते विनिहतो भूमौ ममाभाग्याद्विहंगमः ॥ ४ ॥
त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना ।
सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके ॥ ५ ॥
तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत् ।
अभ्यधावत वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान् ।
मुञ्चमुञ्चेति बहुशः प्राप तां राक्षसाधिपः ॥ ७ ॥
क्रोशन्तीं रामरामेति रामेण रहितां वने ।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ॥ ८ ॥
प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् ।
जगत्सर्वममर्यादं तमसाऽन्धेन संवृतम् ॥ ९ ॥

स तु तां राम रामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च ।
जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १० ॥
तप्ताभरणवर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी ।
रराज राजपुत्री तु विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ११ ॥
उद्धूतेन च वस्त्रेण तस्याः पीतेन रावणः ।
अधिकं परिबभ्राज गिरिर्दीप्त इवाग्निना ॥ १२ ॥
तस्याः परमकल्याण्यास्ताम्राणि सुरभीणि च ।
पद्मपत्राणि वैदेह्या अभ्यकीर्यन्त रावणम् ॥ १३ ॥
तस्याः कौशेयमुद्धूतमाकाशे कनकप्रभम् ।
बभौ चादित्यरागेण ताम्रमभ्रमिवातपे ॥ १४ ॥
तस्यास्तद्विमलं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् ।
न रराज विना रामं विनालमिव पङ्कजम् ॥ १५ ॥
चरणान्नूपुरं भ्रष्टं वैदेह्या रत्नभूषितम् ।
विद्युन्मण्डलसंकाशं पपात धरणीतले ॥ १६ ॥
तरुप्रवालरक्ता सा नीलाङ्गं राक्षसेश्वरम् ।
प्रशोभयत वैदेही गजं कक्ष्येव काञ्चनी ॥ १७ ॥
तां महोल्कामिवाकाशे दीप्यमानां स्वतेजसा ।
जहाराकाशमाविश्य सीतां वैश्रवणानुजः ॥ १८ ॥
तस्यास्तान्यग्निवर्णानि भूषणानि महीतले ।
सघोषाण्यवशीर्यन्त क्षीणास्तारा इवाम्बरात् ॥ १९ ॥
तस्याः स्तनान्तराद्भ्रष्टो हारास्ताराधिपद्युतिः ।
वैदेह्या निपतन्भाति गङ्गेव गगनच्युता ॥ २० ॥
रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम् ।
रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत् ॥ २१ ॥
न व्यपत्रपसे नीच कर्मणाऽनेन रावण ।
ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥ २२ ॥

त्वयैव नूनं दुष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता ।
ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥ २३ ॥
मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्रात्रा सह पतिर्मम ।
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि ॥ २४ ॥
येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि ।
व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः ॥ २५ ॥
नह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् ।
उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान्धारयितुं चिरम् ॥ २६ ॥
न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे ।
मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते ॥ २७ ॥
मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ।
पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम् ॥ २८ ॥
व्यक्तं हिरण्मयांस्त्वं हि संपश्यसि महीरुहान् ।
नदीं वैतरणीं घोरां रुधिरौघविवाहिनीम् ॥ २९ ॥
खड्गपत्रवनं चैव भीमं पश्यसि रावण ।
तप्तकाञ्चनपुष्पां च वैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥ ३० ॥
द्रक्ष्यसे शाल्मलीं तीक्ष्णामायसैः कण्टकैश्चिताम् ।
न हि त्वमीदृशं कृत्वा तस्यालीकं महात्मनः ॥ ३१ ॥
धारितुं शक्यसि चिरं विषं पीत्वेव निर्घृण ।
बद्धस्त्वं कालपाशेन दुर्निवारेण रावण ॥ ३२ ॥
क्व गतो लप्स्यसे शर्म मम भर्तुर्महात्मनः ।
निमेषान्तरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे ॥ ३३ ॥
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश ।
कथं स राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली ।
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥ ३४ ॥

एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा ।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह ॥ ३५ ॥
ह्रियमाणा तु वैदेही कञ्चिन्नाथमपश्यती ।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान्पञ्च वानरपुङ्गवान् ॥ ३६ ॥
तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् ।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ ३७ ॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी ।
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ॥ ३८ ॥
संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् ।
पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ३९ ॥
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः ।
स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥ ४० ॥
जगाम मैथिलीं गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः ।
तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ ४१ ॥
उत्सङ्गेनैव भुजगीं तीक्ष्णदंष्ट्रां महाविषाम् ।
वनानि सरितः शैलान्सरांसि च विहायसा ॥ ४२ ॥
स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः ।
तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् ॥ ४३ ॥
सरितां शरणं गत्वा समतीयाय सागरम् ।
संभ्रमात्परिवृत्तोर्मी रुद्धमीनमहोरगः ॥ ४४ ॥
वैदेह्यां ह्रियमाणायां बभूव वरुणालयः ।
अन्तरिक्षगता वाचः ससृजुश्चारणास्तथा ॥ ४५ ॥
एतदन्तो दशग्रीव इति सिद्धास्तदाऽब्रुवन् ।
स तु सीतां विचेष्टन्तीमङ्केनादाय रावणः ॥ ४६ ॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः ।
सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् ॥ ४७ ॥

संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तःपुरमाविशत् ।
तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहसमन्विताम् ॥ ४८ ॥
निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् ।
अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥ ४९ ॥
यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां पश्यत्यसंमतः ।
मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ५० ॥
यद्यदिच्छेत्तदेवास्या देयं मच्छन्दतो यथा ।
या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किञ्चिदप्रियम् ॥ ५१ ॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम् ।
तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किं कृत्यमिति चिन्तयन् ॥ ५२ ॥

राम--निवर्तनम् ।

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम् ।
निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत ॥ १ ॥
तस्य संत्वरमाणस्य द्रष्टुकामस्य मैथिलीम् ।
क्रूरस्वनोऽथ गोमायुर्विननादास्य पृष्ठतः ॥ २ ॥
स तस्य स्वरमाज्ञाय दारुणं रोमहर्षणम् ।
शङ्कयामास गोमायोः स्वरेण परिशङ्कितः ॥ ३ ॥
अशुभं वत मन्येऽहं गोमायुर्वाशते यथा ।
स्वस्ति स्यादपि वैदेह्या राक्षसैर्भक्षणं विना ॥ ४ ॥
तं दीनमानसं दीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ।
सव्यं कृत्वा महात्मानं घोरांश्च ससृजुः स्वरान् ॥ ५ ॥
तानि दृष्ट्वा निमित्तानि महाघोराणि राघवः ।
न्यवर्तताथ त्वरितो जवेनाश्रममात्मनः ॥ ६ ॥

आजगाम जनस्थानं चिन्तयन्नेव राघवः ।
ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् ॥ ७ ॥
ततो विदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ।
विषण्णः सन्विषण्णेन दुःखितो दुःखभागिना ॥ ८ ॥
स जगर्हेऽथ तं भ्राता दृष्ट्वा लक्ष्मणमागतम् ।
विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते ॥ ९ ॥
गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः ।
उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत् ॥ १० ॥
अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यत्त्वं विहाय ताम् ।
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिति ॥ ११ ॥
न मेऽस्ति संशयो वीर सर्वथा जनकात्मजा ।
विनष्टा भक्षिता वापि राक्षसैर्वनचारिभिः ॥ १२ ॥
अशुभान्येव भूयिष्ठं यथा प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि लक्ष्मण सीतायाः सामग्र्यं प्राप्नुयामहे ॥ १३ ॥
जीवन्त्याः पुरुषव्याघ्र सुताया जनकस्य वै ।
यथा वै मृगसंघाश्च गोमायुश्चैव भैरवम् ॥ १४ ॥
वाशन्ते शकुनाश्चापि प्रदीप्तामभितो दिशम् ।
अपि स्वस्ति भवेत्तस्या राजपुत्र्या महाबल ॥ १५ ॥

इदं हि रक्षो मृगसंनिकाशं
प्रलोभ्य मां दूरमनुप्रयातम् ।
हतं कथंचिन्महता श्रमेण
स राक्षसोऽभून्म्रियमाण एव ॥ १६ ॥
मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं
चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम् ।
असंशयं लक्ष्मण नास्ति सीता
हृता मृता वा पथि वर्तते वा ॥ १७ ॥

स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः ।
पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ १८ ॥
प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह ।
क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः ॥ १९ ॥
राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः ।
क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा ॥ २० ॥
यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम् ।
क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा ॥ २१ ॥
पतित्वममराणां हि पृथिव्याश्चापि लक्ष्मण ।
विना तां तपनीयाभां नेच्छेयं जनकात्मजाम् ॥ २२ ॥
कच्चिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम ।
कच्चित्प्रव्राजनं वीर न मे मिथ्या भविष्यति ॥ २३ ॥
सीतानिमित्तं सौमित्रे मृते मयि गते त्वयि ।
कच्चित्सकामा कैकेयी सुखिता सा भविष्यति ॥ २४ ॥
सपुत्रराज्यां सिद्धार्थां मृतपुत्रा तपस्विनी ।
उपस्थास्यति कौसल्या कच्चित्सौम्येन कैकेयीम् ॥ २५ ॥
यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः ।
संवृत्ता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण ॥ २६ ॥
यदि मामाश्रमगतं वैदेही नाभिभाषते ।
पुरः प्रहसिता सीता विनशिष्यामि लक्ष्मण ॥ २७ ॥
ब्रूहि लक्ष्मण वैदेही यदि जीवति वा न वा ।
त्वयि प्रमत्ते रक्षोभिर्भक्षिता वा तपस्विनी ॥ २८ ॥
सुकुमारी च बाला च नित्यं चादुःखभागिनी ।
मद्वियोगेन वैदेही व्यक्तं शोचति दुर्मनाः ॥ २९ ॥
सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना ।
वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥ ३० ॥

श्रुतश्च मन्ये वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम ।
त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ॥ ३१ ॥
सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने ।
प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ॥ ३२ ॥
दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः ।
तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ॥ ३३ ॥
अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन ।
किं त्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् ॥ ३४ ॥
इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः ।
आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ॥ ३५ ॥
विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपं
क्षुधाश्रमेणैव पिपासया च ।
विनिःश्वसञ्शुष्कमुखो विषण्णः
प्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यम् ॥ ३६ ॥
स्वमाश्रमं स प्रविगाह्य वीरो
विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित् ।
एतत्तदित्येव निवासभूमौ
प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव ॥ ३७ ॥
अथाश्रमादुपावृत्तमन्तरा रघुनन्दनः ।
परिपप्रच्छ सौमित्रिं रामो दुःखादिदं वचः ॥ ३८ ॥
तमुवाच किमर्थं त्वमागतोऽपास्य मैथिलीम् ।
यदा सा तव विश्वासाद्वने विरहिता मया ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वैवाभ्यागतं त्वां मे मैथिलीं त्यज्य लक्ष्मण ।
शङ्कमानं महत्पापं यत्सत्यं व्यथितं मनः ॥ ४० ॥
स्फुरते नयनं सव्यं बाहुश्च हृदयं च मे ।
दृष्ट्वा लक्ष्मण दूरे त्वां सीताविरहितं पथि ॥ ४१ ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत् ॥ ४२ ॥
न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाऽहमिहागतः ।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ४३ ॥
आर्येणेव परिक्रुष्टं लक्ष्मणेति सुविस्वरम् ।
परित्राहीति यद्वाक्यं मैथिल्यास्तच्छ्रुतिं गतम् ॥ ४४ ॥
सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली ।
गच्छ गच्छेति मामाशु रुदती भयविक्लवा ॥ ४५ ॥
प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया ।
प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं तत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ४६ ॥
न तत्पश्याम्यहं रक्षो यदस्य भयमावहेत् ।
निर्वृता भव नास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥ ४७ ॥
विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति ।
त्राहीति वचनं सीते यस्त्रायेत्त्रिदशानपि ॥ ४८ ॥
किंनिमित्तं तु केनापि भ्रातुरालम्ब्य मे स्वरम् ।
विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति ॥ ४९ ॥
राक्षसेनेरितं वाक्यं त्रासात्त्राहीति शोभने ।
न भवत्या व्यथा कार्या कुनारीजनसेविता ॥ ५० ॥
अलं विक्लवतां गन्तुं स्वस्था भव निरुत्सुका ।
न चास्ति त्रिषु लोकेषु पुमान्यो राघवं रणे ॥ ५१ ॥
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत् ।
अजेयो राघवो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमैः ॥ ५२ ॥
एवमुक्ता तु वैदेही परिमोहितचेतना ।
उवाचाश्रूणि मुञ्चन्ती दारुणं मामिदं वचः ॥ ५३ ॥
भावो मयि तवात्यर्थं पाप एव निवेशितः ।
विनष्टे भ्रातरि प्राप्तुं न च त्वं मामवाप्स्यसे ॥ ५४ ॥

संकेताद्भरतेन त्वं रामं समनुगच्छसि ।
क्रोशन्तं हि यथात्यर्थं नैनमभ्यवपद्यसे ॥ ५५ ॥
रिपुः प्रच्छन्नचारी त्वं मदर्थमनुगच्छसि ।
राघवस्यान्तरं प्रेप्सुस्तथैनं नाभिपद्यसे ॥ ५६ ॥
एवमुक्तस्तु वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः ।
क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठ आश्रमादभिनिर्गतः ॥ ५७ ॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं रामः संतापमोहितः ।
अब्रवीद् दुष्कृतं सौम्य तां विना त्वमिहागतः ॥ ५८ ॥
जानन्नपि समर्थं मां रक्षसामपवारणे ।
अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निर्गतो भवान् ॥ ५९ ॥
न हि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यदासि मैथिलीम् ।
क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रिया यत्त्वमिहागतः ॥ ६० ॥
सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत्प्रचोदितः ।
क्रोधस्य वशमागम्य नाकरोः शासनं मम ॥ ६१ ॥
असौ हि राक्षसः शेते शरेणाभिहतो मया ।
मृगरूपेण येनाहमाश्रमादपवाहितः ॥ ६२ ॥
विकृष्य चापं परिधाय सायकं
सलीलबाणेन च ताडितो मया ।
मार्गीं तनुं त्यज्य च विक्लवस्वरो
बभूव केयूरधरः स राक्षसः ॥ ६३ ॥
शराहतेनैव तदार्तया गिरा
स्वरं ममालम्ब्य सुदूरसुश्रवम् ।
उपाहृतं तद्वचनं सुदारुणं
त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम् ॥ ६४ ॥

अन्वेषणम् ।

भृशमाव्रजमानस्य तस्याधो वामलोचनम् ।
प्रास्फुरच्चास्खलद्रामो वेपथुश्चास्य जायते ॥ १ ॥
उपालक्ष्य निमित्तानि सोऽशुभानि मुहुर्मुहुः ।
अपि क्षेमं तु सीताया इति वै व्याजहार ह ॥ २ ॥
त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः ।
शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥
उद्भ्रमन्निव वेगेन विक्षिपन्रघुनन्दनः ।
तत्र तत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्य समन्ततः ॥ ४ ॥
ददर्श पर्णशालां च सीतया रहितां तदा ।
श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ॥ ५ ॥
रुदन्तमिव वृक्षैश्च ग्लानपुष्पमृगद्विजम् ।
श्रिया विहीनं विध्वस्तं संत्यक्तं वनदैवतैः ॥ ६ ॥
विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धबृसीकटम् ।
दृष्ट्वा शून्योटजस्थानं विललाप पुनः पुनः ॥ ७ ॥
हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति ।
निलीनाप्यथवा भीरुरथवा वनमाश्रिता ॥ ८ ॥
गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः ।
अथवा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता ॥ ९ ॥
यत्नान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम् ।
शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुन्मत्त इव लक्ष्यते ॥ १० ॥
वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन्स गिरींश्चापि नदीनदम् ।
बभ्राम विलपन्रामः शोकपङ्कार्णवप्लुतः ॥ ११ ॥
अस्ति कच्चित्त्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया ।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम् ॥ १२ ॥

स्निग्धपल्लवसंकाशां पीतकौशेयवासिनीम् ।
शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी ॥ १३ ॥
अथवाऽर्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम् ।
जनकस्य सुता तन्वी यदि जीवति वा न वा ॥ १४ ॥
ककुभः ककुभोरूं तां व्यक्तं जानाति मैथिलीम् ।
लतापल्लवपुष्पाढ्यो भाति ह्येष वनस्पतिः ॥ १५ ॥
भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्यसि ।
एष व्यक्तं विजानाति तिलकस्तिलकप्रियाम् ॥ १६ ॥
अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतनम् ।
त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम् ॥ १७ ॥
यदि ताल त्वया दृष्टा पक्वतालोपमस्तनी ।
कथयस्व वरारोहां कारुण्यं यदि ते मयि ॥ १८ ॥
यदि दृष्टा त्वया जम्बो जाम्बूनदसमप्रभा ।
प्रियां यदि विजानासि निःशङ्कं कथयस्व मे ॥ १९ ॥
अहो त्वं कर्णिकाराद्य पुष्पितः शोभसे भृशम् ।
कर्णिकारप्रियां साध्वीं शंस दृष्टा यदि प्रिया ॥ २० ॥
चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा ।
दाडिमानपि तान्गत्वा दृष्ट्वा रामो महायशाः ॥ २१ ॥
बकुलानथ पुंनागांश्चन्दनान्केतकांस्तथा ।
पृच्छन्रामो वने भ्रान्त उन्मत्त इव लक्ष्यते ॥ २२ ॥
अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम् ।
मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत् ॥ २३ ॥
गज सा गजनासोरूर्यदि दृष्टा त्वया भवेत् ।
तां मन्ये विदितां तुभ्यमाख्याहि वरवारण ॥ २४ ॥
शार्दूल यदि सा दृष्टा प्रिया चन्द्रनिभानना ।
मैथिली मम विस्रब्धः कथयस्व न ते भयम् ॥ २५ ॥

किं धावसि प्रिये नूनं दृष्टासि कमलेक्षणे ।
वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ॥ २६ ॥
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि ।
नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे ॥ २७ ॥
पीतकौशेयकेनासि सूचिता वरवर्णिनि ।
धावन्त्यपि मया दृष्टा तिष्ठ यद्यस्ति सौहृदम् ॥ २८ ॥
नैव सा नूनमथवा हिंसिता चारुहासिनी ।
कृच्छ्रं प्राप्तं हि मां नूनं यथोपेक्षितुमर्हति ॥ २९ ॥
व्यक्तं सा भक्षिता बाला राक्षसैः पिशिताशनैः ।
विभज्याङ्गानि सर्वाणि मया विरहिता प्रिया ॥ ३० ॥
नूनं तच्छुभदन्तोष्ठं सुनासं शुभकुण्डलम् ।
पूर्णचन्द्रनिभं ग्रस्तं मुखं निष्प्रभतां गतम् ॥ ३१ ॥
सा हि चन्दनवर्णाभा ग्रीवा ग्रैवेयकोचिता ।
कोमला विलपन्त्यास्तु कान्ताया भक्षिता शुभा ॥ ३२ ॥
नूनं विक्षिप्यमाणौ तौ बाहू पल्लवकोमलौ ।
भक्षितौ वेपमानाग्रौ सहस्ताभरणाङ्गदौ ॥ ३३ ॥
मया विरहिता बाला रक्षसां भक्षणाय वै ।
सार्थेनेव परित्यक्ता भक्षिता बहुबान्धवा ॥ ३४ ॥
हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसे त्वं प्रियां क्वचित् ।
हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ॥ ३५ ॥
इत्येवं विलपन्रामः परिधावन्वनाद्वनम् ।
क्वचिदुद्भ्रमते योगात्क्वचिद्विभ्रमते बलात् ॥ ३६ ॥
क्वचिन्मत्त इवाभाति कान्तान्वेषणतत्परः ।
स वनानि नदीः शैलान्गिरिप्रस्रवणानि च ।
काननानि च वेगेन भ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥ ३७ ॥

तदा स गत्वा विपुलं महद्वनं
परीत्य सर्वं त्वथ मैथिलीं प्रति ।
अनिष्ठिताशः स चकार मार्गणे
पुनः प्रियायाः परमं परिश्रमम् ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः ।
रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च ॥ ३९ ॥
अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं संनिरीक्ष्य च सर्वशः ।
उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ ॥ ४० ॥
क नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता ।
केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया ॥ ४१ ॥
वृक्षेणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि ।
अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम् ॥ ४२ ॥
यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः ।
एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्राविलेक्षणाः ॥ ४३ ॥
सीतया रहितोऽहं वै नहि जीवामि लक्ष्मण ।
वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ॥ ४४ ॥
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता ।
कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः ॥ ४५ ॥
अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः ।
कामवृत्तमनार्यं वा मृषावादिनमेव च ॥ ४६ ॥
धिक्त्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता ।
विवशं शोकसंतप्तं दीनं भग्नमनोरथम् ॥ ४७ ॥
मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम् ।
क गच्छसि वरारोहे मा मोत्सृज सुमध्यमे ॥ ४८ ॥
त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः ।
इतीव विलपन्रामः सीतादर्शनलालसः ॥ ४९ ॥

न ददर्श सुदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम् ।
अनायासादयमानं तं सीतां शोकपरायणम् ॥ ५० ॥
पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम् ।
लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया ॥ ५१ ॥
मा विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह ।
इदं गिरिवरं वीर बहुकन्दरशोभितम् ॥ ५२ ॥
प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली ।
सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम् ॥ ५३ ॥
सरितं वापि संप्राप्ता मीनवञ्जुलसेविताम् ।
स्नातुकामा निलीना स्याद्धासकामा वने क्वचित् ॥ ५४ ॥
जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ ।
तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन्क्षिप्रमेव यतावहे ॥ ५५ ॥
वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा ।
मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ५६ ॥
एवमुक्तः स सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः ।
सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे ॥ ५७ ॥
तौ वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च ।
निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ ॥ ५८ ॥
तस्य शैलस्य सानूनि शिलाश्च शिखराणि च ।
निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः ॥ ५९ ॥
विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
नेह पश्यामि सौमित्रे वैदेहीं पर्वते शुभाम् ॥ ६० ॥
ततो दुःखाभिसंतप्तो लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
विचरन्दण्डकारण्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ ६१ ॥
प्राप्स्यसे त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिं बद्ध्वा महीमिमाम् ॥ ६२ ॥

एवमुक्तस्तु वीरेण लक्ष्मणेन स राघवः ।
उवाच दीनया वाचा दुःखाभिहतचेतनः ॥ ६३ ॥
वनं सुविचितं सर्वं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ।
गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः ॥ ६४ ॥
नहि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।
एवं स विलपन्रामः मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् ॥ ६५ ॥
स विह्वलितसर्वाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः ।
विषसादातुरो दीनो निःश्वस्याशीतमायतम् ॥ ६६ ॥
बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः ।
हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ॥ ६७ ॥
तं सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवम् ।
बहुप्रकारं शोकार्तः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः ॥ ६८ ॥
अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ।
अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः ॥ ६९ ॥

राम-विलापः !

सीतामपश्यन्धर्मात्मा शोकोपहतचेतनः ।
विललाप महाबाहू रामः कमललोचनः ॥ १ ॥
पश्यन्निव च तां सीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ।
उवाच राघवो वाक्यं विलापाश्रयदुर्वचम् ॥ २ ॥
त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतरा प्रिये ।
आवृणोषि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी ॥ ३ ॥
कदलीकाण्डसदृशौ कदल्या संवृतावुभौ ।
ऊरू पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम् ॥ ४ ॥
कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे ।
अलं ते परिहासेन मम बाधावहेन वै ॥ ५ ॥

विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं न प्रशस्यते ।
अवगच्छामि ते शीलं परिहासप्रियं प्रिये ॥ ६ ॥
आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव ।
सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा ॥ ७ ॥
नहि सा विलपन्तं मामुपसंप्रैति लक्ष्मण ।
एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण ॥ ८ ॥
शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः ।
हा ममार्ये क्व याताऽसि हा साध्वि वरवर्णिनि ॥ ९ ॥
हा सकामाद्य कैकेयी देवि मेऽद्य भविष्यति ।
सीतया सह निर्यातो विना सीतामुपागतः ॥ १० ॥
कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं मम ।
निर्वीर्य इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति ॥ ११ ॥
कातरत्वं प्रकाशं हि सीतापनयनेन मे ।
निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम् ॥ १२ ॥
कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ये निरीक्षितुम् ।
विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया ॥ १३ ॥
सुताविनाशसंतप्तो मोहस्य वशमेष्यति ।
अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम् ॥ १४ ॥
स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एव मतो मम ।
तन्मामुत्सृज्य हि वने गच्छायोध्यापुरीं शुभाम् ॥ १५ ॥
न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन ।
गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात्त्वया ॥ १६ ॥
अनुज्ञातोऽसि रामेण पालयेति वसुंधराम् ।
अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभो ॥ १७ ॥
कौसल्या च यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया ।
रक्षणीया प्रयत्नेन भवता सूक्तचारिणा ॥ १८ ॥

सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्रसूदन ।
विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत् ॥ १९ ॥

इति विलपति राघवे तु दीने
वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या ।
भयविकलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि
व्यथितमना भृशमातुरो बभूव ॥ २० ॥

स राजपुत्रः प्रियया विहीनः
शोकेन मोहेन च पीड्यमानः ।
विषादयन्भ्रातरमार्तरूपो
भूयो विषादं प्रविवेश तीव्रम् ॥ २१ ॥

स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं
शोके निमग्नो विपुले तु रामः ।
उवाच वाक्यं व्यसनानुरूप-
मुष्णं विनिःश्वस्य रुदन्सशोकम् ।

न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी
मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम् ।
शोकानुशोको हि परम्पराया
मामेति भिन्दन्हृदयं मनश्च ॥ २३ ॥

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि
पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि ।
तत्रायमद्यापतितो विपाको
दुःखेन दुःखं यदहं विशामि ॥ २४ ॥

राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः
पितुर्विनाशो जननीवियोगः ।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेग-
मापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि ॥ २५ ॥

सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं
शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम् ।
सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णं
काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः ॥ २६ ॥
सा नूनमार्या मम राक्षसेन
ह्यभ्याहृता खं समुपेत्य भीरुः ।
अप्यस्वरं सुस्वरविप्रलापा
भयेन विक्रन्दितवत्यभीक्ष्णम् ॥ २७ ॥
तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापं
तस्या मुखं कुञ्चितकेशभारम् ।
रक्षोवशं नूनमुपागतायाः
न भ्राजते राहुमुखे यथेन्दुः ॥ २८ ॥
तां हारपाशस्य सदोचितान्तां
ग्रीवां प्रियाया मम सुव्रतायाः ।
रक्षांसि नूनं परिपीतवन्ति
शून्ये हि भित्त्वा रुधिराशनानि ॥ २९ ॥
अस्मिन्मया सार्धमुदारशीला
शिलातले पूर्वमुपोपविष्टा ।
कान्तस्मिता लक्ष्मण जातहासा
त्वमाह सीता बहुवाक्यजातम् ॥ ३० ॥
गोदावरीयं सरितां वरिष्ठा
प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम् ।
अप्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि
नैकाकिनी याति हि सा कदाचित् ॥ ३१ ॥
पद्मानना पद्मपलाशनेत्रा
पद्मानि वाऽऽनेतुमभिप्रयाता ।

तदप्ययुक्तं नहि सा कदाचिन्
मया विना गच्छति पङ्कजानि ॥ ३२ ॥
कामं त्विदं पुष्पितवृक्षषण्डं
नानाविधैः पक्षिगणैरुपेतम् ।
वनं प्रयाता नु तदप्ययुक्त-
मेकाकिनी साऽतिबिभेति भीरुः ॥ ३३ ॥
आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ
लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन् ।
मम प्रिया सा क्व गता हृता वा
शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम् ॥ ३४ ॥
लोकेषु सर्वेषु च नास्ति किञ्चिद्
यत्तेन नित्यं विदितं भवेत्तत् ।
शंसस्व वायो कुलपालिनीं
तां मृता हृता वा पथि वर्तते वा ॥ ३५ ॥
इतीव तं शोकविधेयदेहं
रामं विसंज्ञं विलपन्तमेव ।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो
न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम् ॥ ३६ ॥
शोकं विसृज्याद्य धृतिं भजस्व
सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः ।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके
सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ ३७ ॥
इतीव सौमित्रिमुदग्रपौरुषं
ब्रुवन्तमार्तं रघुवंशसत्तमः ।
न चिन्तयामास धृतिं विमुक्तवान्
पुनश्च दुःखं महदप्युपागमत् ॥ ३८ ॥

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।
शीघ्रं लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरीं नदीम् ॥ ३९ ॥
अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता ।
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि ॥ ४० ॥
नदीं गोदावरीं रम्यां जगाम लघुविक्रमः ।
तां लक्ष्मणस्तीर्थवतीं विचित्वा राममब्रवीत् ॥ ४१ ॥
नैनां पश्यामि तीर्थेषु क्रोशतो न शृणोति मे ।
कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी ॥ ४२ ॥
नहि तं वेद्मि वै राम यत्र सा तनुमध्यमा ।
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः संतापमोहितः ॥ ४३ ॥
रामः समभिचक्राम स्वयं गोदावरीं नदीम् ।
स तामुपस्थितो रामः क्व सीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ४४ ॥
भूतानि राक्षसेन्द्रेण वधार्हेण हृतामपि ।
न तां शशंसु रामाय तथा गोदावरी नदी ॥ ४५ ॥
ततः प्रचोदिता भूतैः शंस चास्मै प्रियामिति ।
न च सा ह्यवदत्सीतां पृष्टा रामेण शोचता ॥ ४६ ॥
रावणस्य च तद्रूपं कर्माणि च दुरात्मनः ।
ध्यात्वा भयात्तु वैदेहीं सा नदी न शशंस ह ॥ ४७ ॥
निराशस्तु तया नद्या सीताया दर्शने कृतः ।
उवाच रामः सौमित्रिं सीतादर्शनकर्शितः ॥ ४८ ॥
एषा गोदावरी सौम्य किंचिन्न प्रतिभाषते ।
किं नु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः ॥ ४९ ॥
मातरं चैव वैदेह्या विना तामहमप्रियम् ।
या मे राज्यविहीनस्य वने वन्येन जीवतः ॥ ५० ॥
सर्वं व्यपानयच्छोकं वैदेही क्व नु सा गता ।
ज्ञातिवर्गविहीनस्य वैदेहीमप्यपश्यतः ॥ ५१ ॥

मन्ये दीर्घा भविष्यन्ति रात्रयो मम जाग्रतः ।
मन्दाकिनीं जनस्थानमिमं प्रस्रवणं गिरिम् ॥ ५२ ॥
सर्वाण्यनुचरिष्यामि यदि सीता हि लभ्यते ।
एते महामृगा वीरा मामीक्षन्ते पुनः पुनः ॥ ५३ ॥
वक्तुकामा इह हि मे इङ्गितान्युपलक्षये ।
तांस्तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो राघवः प्रत्युवाच ह ॥ ५४ ॥
क्व सीतेति निरीक्षन्वै बाष्पसंरुद्धया गिरा ।
एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगाः सहसोत्थिताः ॥ ५५ ॥
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे दर्शयन्तो नभःस्थलम् ।
मैथिली ह्रियमाणा सा दिशं यामभ्यपद्यत ॥ ५६ ॥
तेन मार्गेण गच्छन्तो निरीक्षन्ते नराधिपम् ।
येन मार्गं च भूमिं च निरीक्षन्ते स्म ते मृगाः ॥ ५७ ॥
पुनर्नदन्तो गच्छन्ति लक्ष्मणेनोपलक्षिताः ।
तेषां वचनसर्वस्वं लक्षयामास चेङ्गितम् ॥ ५८ ॥
उवाच लक्ष्मणो धीमाञ्ज्येष्ठं भ्रातरमार्तवत् ।
क्व सीतेति त्वया पृष्टा यदिमे सहसोत्थिताः ॥ ५९ ॥
दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः ।
साधु गच्छावहे देव दिशमेतां च नैर्ऋतीम् ॥ ६० ॥
बाढमित्येव काकुत्स्थः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् ।
लक्ष्मणानुगतः श्रीमान्वीक्षमाणो वसुंधराम् ॥ ६१ ॥
वसुन्धरायां पतितपुष्पमार्गमपश्यताम् ।
पुष्पवृष्टिं निपतितां दृष्ट्वा रामो महीतले ॥ ६२ ॥
उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः ।
अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण ॥ ६३ ॥
अपिनद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने ।
मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी ॥ ६४ ॥

अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्वन्तो मम प्रियम् ।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं पुरुषर्षभम् ॥ ६५ ॥
उवाच रामो धर्मात्मा गिरिं प्रस्रवणाकुलम् ।
कच्चित्क्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ६६ ॥
रामा रम्ये वनोद्देशे मया विरहिता त्वया ।
क्रुद्धोऽब्रवीद्गिरिं तत्र सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ६७ ॥
तां हेमवर्णां हेमाङ्गीं सीतां दर्शय पर्वत ।
यावत्सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम् ॥ ६८ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण पर्वतो मैथिलीं प्रति ।
दर्शयन्निव तां सीतां नादर्शयत राघवे ॥ ६९ ॥
ततो दाशरथी राम उवाच च शिलोच्चयम् ।
मम बाणाग्निनिर्दग्धो भस्मीभूतो भविष्यसि ॥ ७० ॥
असेव्यः सर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः ।
इमां वा सरितं चाद्य शोषयिष्यामि लक्ष्मण ॥ ७१ ॥
यदि नाख्याति मे सीतामद्यचन्द्रनिभाननाम् ।
एवं प्ररुषितो रामो दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥ ७२ ॥
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत् ।
त्रस्ताया रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः ॥ ७३ ॥
राक्षसेनानुसृप्ताया वैदेह्याश्च पदानि तु ।
स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च ॥ ७४ ॥
भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं बहुधा रथम् ।
संभ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम् ॥ ७५ ॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या कीर्णाः कनकबिन्दवः ।
भूषणानां हि सौमित्रे माल्यानि विविधानि च ॥ ७६ ॥
तप्तबिन्दुनिकाशैश्च चित्रैः क्षतजबिन्दुभिः ।
आवृतं पश्य सौमित्रे सर्वतो धरणीतलम् ॥ ७७ ॥

मन्ये लक्ष्मण वैदेही राक्षसैः कामरूपिभिः ।
भित्त्वा भित्त्वा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति ॥ ७८ ॥
तस्या निमित्तं सीताया द्वयोर्विवदमानयोः ।
बभूव युद्धं सौमित्रे घोरं राक्षसयोरिह ॥ ७९ ॥
मुक्तामणिचितं चेदं रमणीयं विभूषितम् ।
धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद्धनुः ॥ ८० ॥
राक्षसानामिदं वत्स सुराणामथवापि वा ।
तरुणादित्यसंकाशं वैदूर्यगुलिकाचितम् ॥ ८१ ॥
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम् ।
छत्रं शतशलाकं च दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ ८२ ॥
भग्नदण्डमिदं सौम्य भूमौ कस्य निपातितम् ।
काञ्चनोरश्छदाश्चेमे पिशाचवदनाः खराः ॥ ८३ ॥
भीमरूपा महाकायाः कस्य वा निहता रणे ।
दीप्तपावकसंकाशो द्युतिमान्समरध्वजः ॥ ८४ ॥
अपविद्धश्च भग्नश्च कस्य साङ्ग्रामिको रथः ।
रथाक्षमात्रा विशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥ ८५ ॥
कस्येमे निहता बाणाः प्रकीर्णा घोरदर्शनाः ।
शरावरौ शरैः पूर्णौ विध्वस्तौ पश्य लक्ष्मण ॥ ८६ ॥
प्रतोदाभीषुहस्तोऽयं कस्य वा सारथिर्हतः ।
पदवी पुरुषस्यैषा व्यक्तं कस्यापि रक्षसः ॥ ८७ ॥
वैरं शतगुणं पश्य मम तैर्जीवितान्तकम् ।
सुघोरहृदयैः सौम्य राक्षसैः कामरूपिभिः ॥ ८८ ॥
हृता मृता वा वैदेही भक्षिता वा तपस्विनी ।
न धर्मस्त्रायते सीतां ह्रियमाणां महावने ॥ ८९ ॥
भक्षितायां हि वैदेह्यां हृतायामपि लक्ष्मण ।
के हि लोकप्रियं कर्तुं शक्ताः सौम्य ममेश्वराः ॥ ९० ॥

कर्तारमपि लोकानां शूरं करुणवेदिनम् ।
अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥ ९१ ॥
मृदुं लोकहिते युक्तं दान्तं करुणवेदिनम् ।
निर्वीर्य इति मन्यन्ते नूनं मां त्रिदशेश्वराः ॥ ९२ ॥
मां प्राप्य हि गुणो दोषः संवृत्तः पश्य लक्ष्मण ।
अद्यैव सर्वभूतानां रक्षसामभवाय च ॥ ९३ ॥
संहृत्यैव शशिज्योत्स्नां महान्सूर्य इवोदितः ।
संहृत्यैव गुणान्सर्वान्मम तेजः प्रकाशते ॥ ९४ ॥
नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
किंनरा वा मनुष्या वा सुखं प्राप्स्यन्ति लक्ष्मण ॥ ९५ ॥
ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशं पश्य लक्ष्मण ।
असंपातं करिष्यामि ह्यद्य त्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ९६ ॥
संनिरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ।
विप्रनष्टानलमरुद्भास्करद्युतिसंवृतम् ॥ ९७ ॥
विनिर्मथितशैलाग्रं शुष्यमाणजलाशयम् ।
ध्वस्तद्रुमलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम् ॥ ९८ ॥
त्रैलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तं कालकर्मणा ।
न ते कुशलिनीं सीतां प्रदास्यन्ति ममेश्वराः ॥ ९९ ॥
अस्मिन्मुहूर्ते सौमित्रे मम द्रक्ष्यन्ति विक्रमम् ।
नाकाशमुत्पतिष्यन्ति सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥ १०० ॥
समाकुलममर्यादं जगत्पश्याद्य लक्ष्मण ।
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ १०१ ॥
करिष्ये मैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ।
मम रोषप्रयुक्तानां विशिखानां बलं सुराः ॥ १०२ ॥
द्रक्ष्यन्त्यद्य विमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ।
नैव देवा न दैतेया न पिशाचा न राक्षसाः ॥ १०३ ॥

भविष्यन्ति मम क्रोधात्त्रैलोक्ये विप्रणाशिते ।
देवदानवयक्षाणां लोका ये रक्षसामपि ॥ १०४ ॥
बहुधा निपतिष्यन्ति बाणौघैः शकलीकृताः ।
निर्मर्यादानिमाँल्लोकान्करिष्याम्यद्य सायकैः ॥ १०५ ॥
हृतां मृतां वा सौमित्रे न दास्यन्ति ममेश्वराः ।
तथारूपां हि वैदेहीं न दास्यन्ति यदि प्रियाम् ॥ १०६ ॥
नाशयामि जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
यावद्दर्शनमस्या वै तापयामि च सायकैः ॥ १०७ ॥
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षः स्फुरमाणोष्ठसंपुटः ।
वल्कलाजिनमाबद्ध्य जटाभारमबन्धयत् ॥ १०८ ॥
तस्य क्रुद्धस्य रामस्य तथाभूतस्य धीमतः ।
त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं रुद्रस्येव बभौ तनुः ॥ १०९ ॥
लक्ष्मणादथ चादाय रामो निष्पीड्य कार्मुकम् ।
शरमादाय संदीप्तं घोरमाशीविषोपमम् ॥ ११० ॥
संदधे धनुषि श्रीमान्रामः परपुरञ्जयः ।
युगान्ताग्निरिव क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ १११ ॥
यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः ।
नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ।
तथाहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥ ११२ ॥
पुरेव मे चारुदतीमनिन्दितां
दिशन्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलीम् ।
सदेवगन्धर्वमनुष्यपन्नगं
जगत्सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥ ११३ ॥
तं तथा शोकसंतप्तं विलपन्तमनाथवत् ।
ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्तादिव लक्ष्मणः ।
रामं संबोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् ॥ ११४ ॥

महता तपसा चापि महता चापि कर्मणा ।
राज्ञा दशरथेनासील्लब्धोऽमृतमिवामरैः ॥ ११५ ॥
तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ।
राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथा श्रुतम् ॥ ११६ ॥
यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे ।
प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यति ॥ ११७ ॥
आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः ।
संस्पृशन्त्यग्निवद्राजन्क्षणेन व्यपयान्ति च ॥ ११८ ॥
लोकस्वभाव एवैष ययातिर्नहुषात्मजः ।
गतः शक्रेण सालोक्यमनयस्तं समस्पृशत् ॥ ११९ ॥
महर्षियो वसिष्ठस्तु यः पितुर्नः पुरोहितः ।
अह्ना पुत्रशतं जज्ञे तथैवास्य पुनर्हतम् ॥ १२० ॥
या चेयं जगतो माता सर्वलोकनमस्कृता ।
अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते कोशलेश्वर ॥ १२१ ॥
यौ धर्मौ जगतो नेत्रौ यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
आदित्यचन्द्रौ ग्रहणमभ्युपेतौ महाबलौ ॥ १२२ ॥
सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ ।
न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥ १२३ ॥
दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम् ।
इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे ॥ १२४ ॥
किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषर्षभ ।
तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ १२५ ॥
इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ।
राक्षसैर्बहुभिः कीर्णं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ १२६ ॥
सन्तीह गिरिदुर्गाणि निर्दराः कन्दराणि च ।
गुहाश्च विविधा घोरा नानामृगगणाकुलाः ॥ १२७ ॥

आवासः किन्नराणां च गन्धर्वभवनानि च ।
तानि युक्तो मया सार्धं समन्वेषितुमर्हसि ॥ १२८ ॥
त्वद्विधा बुद्धिसम्पन्ना महात्मानो नरर्षभाः ।
आपत्सु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः ॥ १२९ ॥
इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः ।
क्रुद्धो रामः शरं घोरं संधाय धनुषि क्षुरम् ॥ १३० ॥

जटायुर्दर्शनम् ।

ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम् ।
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ॥ १ ॥
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः ॥ २ ॥
गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम् ।
एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैः शरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥ ३ ॥
इत्युक्त्वाभ्यपतद्द्रष्टुं संधाय धनुषि क्षुरम् ।
क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां चालयन्निव मेदिनीम् ॥ ४ ॥
तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् ।
अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥ ५ ॥
यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने ।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥ ६ ॥
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥ ७ ॥
सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे प्रभो ।
विध्वंसितरथच्छत्रः पतितो धरणीतले ॥ ८ ॥
एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा ।
अयमस्य रणे राम भग्नः साङ्ग्रामिको रथः ॥ ९ ॥

अयं तु सारथिस्तस्य मत्पक्षनिहतो भुवि ।
परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः ॥ १० ॥
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् ।
रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि ॥ ११ ॥
गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः ।
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः ॥ १२ ॥
इत्युक्त्वा दुर्लभान्प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ।
त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य प्राणा जग्मुर्विहायसम् ॥ १३ ॥
तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् ।
रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ १४ ॥
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् ।
गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥ १५ ॥
या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः ।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ॥ १६ ॥
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् ।
गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज ॥ १७ ॥
एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥ १८ ॥
ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ ।
उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ ॥ १९ ॥
शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृध्राय राघवौ ।
स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ॥ २० ॥
कृतोदकौ तावपि पक्षिसत्तमे
स्थिरां च बुद्धिं प्रणिधाय जग्मतुः ।
प्रवेश्य सीताधिगमे ततो मनो
वनं सुरेन्द्राविव विष्णुवासवौ ॥ २१ ॥

हरिश्चन्द्रः ।

राज्य--दानम् ।

विश्वामित्र उवाच—

मया पूर्वं श्रुतं राजन्कीर्तिस्ते विपुला भुवि ।
वसिष्ठेन च संप्रोक्तं दाता नास्ति महीतले ॥ १ ॥
हरिश्चन्द्रो नृप श्रेष्ठः सूर्यवंशे महीपतिः ।
तादृशो नृपतिर्दाता न भूतो न भविष्यति ॥ २ ॥
पृथिव्यां परमोदारस्त्रिशंकुतनयो यथा ।
अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य विवाहो मेऽस्ति पार्थिव ।
पुत्रस्य च महाभाग तदर्थं देहि मे धनम् ॥ ३ ॥

राजोवाच—

विवाहं कुरु विप्रेन्द्र ददामि प्रार्थितं तव ।
यदिच्छसि धन कामं दाता तस्यास्मि निश्चितम् ॥ ४ ॥

व्यास उवाच—

इत्युक्तः कौशिकस्तेन वञ्चनातत्परो मुनिः ।
उद्भाव्य मायां गांधर्वीं पार्थिवायाऽप्यदर्शयत् ॥ ५ ॥
कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम् ।
वेदीमध्ये नृपाऽद्य त्वं देहि दानं यथेप्सितम् ।

राजोवाच—

किं तेऽभीष्टं द्विज ब्रूहि ददामि वाञ्छितं किल ॥ ६ ॥
अदेयमपि संसारे यशः कामोऽस्मि सांप्रतम् ।
व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै ।
नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम् ॥ ७ ॥

विश्वामित्र उवाच—

राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम् ।
गजाश्वरथरत्नाढ्यं वेदीमध्येऽतिपावने ॥ ८ ॥

व्यास उवाच—

मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः ।
दत्तमित्युक्तवान्राज्यमविचार्य यदृच्छया ॥ ६ ॥
गृहीतामिति तं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः ।
दक्षिणां देहि राजेन्द्र दानयोग्यं महामते ।
दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत् ॥ १० ॥
इत्युक्तस्तु तदा राजा तमुवाचाऽतिविस्मितः ।
ब्रूहि कियद्धनं तुभ्यं देयं स्वामिन् मयाधुना ॥ ११ ॥
दक्षिणानिष्क्रयं साधो वद तावत्प्रमाणकम् ।
दानपूर्त्यै प्रदास्यामि स्वस्थो भव तपोधन ॥ १२ ॥
विश्वामित्रस्तु तच्छ्रुत्वा तमाह मेदिनीपतिम् ।
हेमभारद्वयं सार्धं दक्षिणां देहि सांप्रतम् ॥ १३ ॥
दास्यामीति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजातिविस्मितः ।
तदैव सैनिकास्तस्य वीक्षमाणाः समागताः ।
दृष्ट्वा महीपतिं व्यग्रं तुष्टुवुस्ते मुदान्विताः ॥ १४ ॥

व्यास उवाच—

श्रुत्वा तेषां वचो राजा नोक्त्वा किंचिच्छुभाशुभम् ।
चिन्तयन्स्वकृतं कर्म ययावंतःपुरे ततः ॥ १५ ॥
किं मया स्वीकृतं दानं सर्वस्वं यत्समर्पितम् ।
वञ्चितोऽहं द्विजेनात्र वने पाटच्चरैरिव ॥ १६ ॥
राज्यं सोपस्करं तस्मै मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ।
भारद्वयं सुवर्णस्य सार्धं च दक्षिणा पुनः ॥ १७ ॥
किं करोमि मतिभ्रंष्टानज्ञातं कपटं मुनेः ।
प्रतारितोऽहं सहसा ब्राह्मणेन तपस्विना ॥ १८ ॥
न जाने दैवकार्यं वै हा दैव किं भविष्यति ।

इति चिंतापरो राजा गृहं प्राप्तोऽतिविह्वलः ॥ १९ ॥
पतिं चिन्तापरं दृष्ट्वा राज्ञी पप्रच्छ कारणम् ।
किं प्रभो विमनाभासि का चिन्ता ब्रूहि सांप्रतम् ॥ २० ॥
कस्माच्छोचसि राजेन्द्र शोकस्य कारणं वद ।
नाऽरातिर्विद्यते काऽपि बलवान् दुर्बलोऽपि वा ।
वरुणोऽपि सुसंतुष्टः कृतकृत्योऽसि भूतले ॥ २१ ॥
चिन्तया क्षीयते देहो नास्ति चिन्ता समा मृतिः ।
त्यज्य तां नृपशार्दूल स्वस्थो भव विचक्षण ॥ २२ ॥
तन्निशम्य प्रियावाक्यं प्रीतिपूर्वं नराधिपः ।
प्रोवाच किंचिच्चिन्तायाः कारणं च शुभाशुभम् ॥ २३ ॥
भोजनं न चकाराऽसौ चिन्ताविष्टस्तदा नृपः ।
सुप्त्वापि शयने शुभ्रे लेभे निद्रां न भूमिपः ॥ २४ ॥
प्रातरुत्थायचिन्तार्तो यावत्संध्यादिकाः क्रियाः ।
करोति नृपतिस्तावद्विश्वामित्रः समागतः ॥ २५ ॥
क्षत्रा निवेदितो राज्ञे मुनिः सर्वस्वहारकः ।
आगत्योवाच राजानं प्रणामन्तं पुनः पुनः ॥ २६ ॥

विश्वामित्र उवाच—

राजंस्त्यज स्वराज्यं मे देहि वाचा प्रतिश्रुतम् ।
सुवर्णं स्पृश राजेन्द्र सत्यवाग् भव सांप्रतम् ॥ २७ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

स्वामिन् राज्यं तवेदं मे मया दत्तं किलाधुना ।
त्यक्त्वान्यत्र गमिष्यामि मा चिन्तां कुरु कौशिक ॥ २८ ॥
सर्वस्वं मम ते ब्रह्मन् गृहीतं विधिवद्विभो ।
सुवर्णदक्षिणां दातुमशक्तो ह्यधुना द्विज ॥ २९ ॥
दानं ददामि ते तावद् यावन्मे स्याद्धनागमः ।
पुनश्चेत् कालयोगेन तदा दास्यामि दक्षिणाम् ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा नृपतिः प्राह पुत्रं भार्यां च माधवीम् ।
राज्यमस्मै प्रदत्तं वै मया वेद्यां सुविस्तरम् ॥ ३१ ॥
हस्त्यश्वरथसंयुक्तं रत्नहेमसमन्वितम् ।
त्यक्त्वा त्रीणि शरीराणि सर्वं चास्मै समर्पितम् ॥ ३२ ॥
त्यक्त्वाऽयोध्यां गमिष्यामि कुत्रचित् वनगह्वरे ।
गृह्णात्विदं मुनिः सम्यग्राज्यं सर्वं समृद्धिमत् ॥ ३३ ॥
इत्याभाष्य सुतं भार्यां हरिश्चन्द्रः स्वमंदिरात् ।
विनिर्गतः सुधर्मात्मा मानयंस्तं द्विजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
व्रजन्तं भूपतिं वीक्ष्य भार्या पुत्रावुभावपि ।
चिन्तातुरौ सुदीनौ तौ जग्मतुः पृष्ठतस्तदा ॥ ३५ ॥
हाहाकारो महानासीन्नगरे वीक्ष्य तांस्तथा ।
चुक्रुशुः प्राणिनः सर्वे साकेतपुरवासिनः ॥ ३६ ॥
हा राजन् किं कृतं कर्म कुतः क्लेशः समागतः ।
वञ्चितोऽसि महाराज विधिनाऽपण्डितेन ह ॥ ३७ ॥
सर्वे वर्णास्तदा दुःखमाप्नुयुस्तं महीपतिम् ।
विलोक्य भार्यया सार्धं पुत्रेण च महात्मना ॥ ३८ ॥
निनिन्दुर्ब्राह्मणं तं तु दुराचारं पुरौकसः ।
धूर्तोऽयमिति भाषन्तो दुःखार्त्ता ब्राह्मणादयः ॥ ३९ ॥
निर्गत्य नगरात्तस्माद्विश्वामित्रः क्षितीश्वरम् ।
गच्छन्तं तमुवाचेदं समेत्य निष्ठुरं वचः ॥ ४० ॥
दक्षिणायाः सुवर्णं मे दत्त्वा गच्छ नराधिप ।
नाहंऽदास्यामि वा ब्रूहि मया त्यक्तं सुवर्णकम् ॥ ४१ ॥
राज्यं गृहाण वा सर्वं लोभश्चेद्धृदि वर्तते ।
दत्तं चेन्मन्यसे राजन् देहि यत्तत्प्रतिश्रुतम् ॥ ४२ ॥
एवं ब्रुवन्तं गाधेयं हरिश्चन्द्रो महीपतिः ।
प्रणिपत्य सुदीनात्मा कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत् ॥ ४३ ॥

अदत्त्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम् ।
प्रतिज्ञा मे मुनिश्रेष्ठ विषादं त्यज सुव्रत ॥ ४४ ॥
सूर्यवंशसमुद्भूतः क्षत्रियोऽहं महीपतिः ।
राजसूयस्य यज्ञस्य कर्ता वाञ्छितदो नृषु ॥ ४५ ॥
कथं करोमि नाकारं स्वामिन् दत्त्वा यदृच्छया ।
अवश्यमेव दातव्यमृणं मे द्विजसत्तम ॥ ४६ ॥
स्वस्थो भव प्रदास्यामि सुवर्णं मनसेप्सितम् ।
किञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्प्राप्स्याम्यहं धनम् ॥ ४७ ॥

विश्वामित्र उवाच—

कुतस्ते भविता राजन् धनप्राप्तिरतः परम् ।
गतं राज्यं तथा कोशो बलं चैवार्थ-साधनम् ॥ ४८ ॥
वृथाऽऽशा ते महीपाल धनार्थे किं करोम्यहम् ।
निर्धनं त्वां च लोभेन पीडयामि कथं नृपम् ॥ ४९ ॥
तस्मात्कथय भूपाल न दास्यामीति सांप्रतम् ।
त्यक्त्वाऽऽशां महतीं कामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥ ५० ॥
यथेष्टं व्रज राजेन्द्र भार्यापुत्रसमन्वितः ।
सुवर्णं नास्ति किं तुभ्यं ददामीति वदाधुना ॥ ५१ ॥

व्यास उवाच—

गच्छन् वाक्यमिदं श्रुत्वा ब्राह्मणस्य च भूपतिः ।
प्रत्युवाच मुनिं ब्रह्मन् धैर्यं कुरु ददाम्यहम् ॥ ५२ ॥
मम देहोऽस्ति भार्यायाः पुत्रस्य च ह्यनामयः ।
क्रीत्वा देहं तु तं नूनमृणं दास्यामि ते द्विज ॥ ५३ ॥
ग्राहकं पश्य विप्रेन्द्र वाराणस्यां पुरि प्रभो ।
दासभावं गमिष्यामि सदारोऽहं सपुत्रकः ॥ ५४ ॥
गृहाण काञ्चनं पूर्णं सार्धं भारद्वयं मुने ।
मौल्येन दत्त्वा सर्वान्नः संतुष्टो भव भूधर ॥ ५५ ॥

इति ब्रुवञ्जगामाथ सहपत्न्या सुतान्वितः ।
उमया कान्तया सार्धं यत्राऽस्ते शंकरः स्वयम् ॥ ५६ ॥
तां दृष्ट्वा च पुरीं रम्यां मनसो ह्लादकारिणीम् ।
उवाच स कृतार्थोऽस्मि पुरीं पश्यन्सुवर्चसम् ॥ ५७ ॥
ततो भागीरथीं प्राप्य स्नात्वा देवादितर्पणम् ।
देवार्चनं च निर्वर्त्य कृतवान् दिग्विलोकनम् ॥ ५८ ॥
प्रविश्य वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् ।
नैषा मनुष्यभुक्तेति शूलपाणेः परिग्रहः ॥ ५९ ॥
जगाम पद्भ्यां दुःखार्तः सह पत्न्या समाकुलः ।
पुरीं प्रविश्य स नृपो विश्वासमकरोत्तदा ॥ ६० ॥
ददृशेऽथ मुनिश्रेष्ठं ब्राह्मणं दक्षिणार्थिनम् ।
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् ॥ ६१ ॥
प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम् ।
इमे प्राणाः सुतश्चाऽयं प्रिया पत्नी मुने मम ॥ ६२ ॥
येन ते कृत्यमस्त्याशुगृहाणाऽद्य द्विजोत्तम ।
यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाऽऽख्यातुमर्हसि ॥ ६३ ॥

विश्वामित्र उवाच—

पूर्णः समासो भद्रं ते दीयतां मम दक्षिणा ।
पूर्वं तस्य निमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि ॥ ६४ ॥

राजोवाच—

ब्रह्मन्नाऽद्याऽपि संपूर्णो मासो ज्ञानतपोबल ।
तिष्ठत्येकदिनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व नाऽपरम् ॥ ६५ ॥

विश्वामित्र उवाच—

एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः ।
शापं तव प्रदास्यामि न चेत्तदा प्रयच्छसि ॥ ६६ ॥

इत्युक्त्वाऽथ ययौ विप्रो राजा चाचिन्तयत्तदा ।
कथमस्मै प्रयच्छामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥ ६७ ॥
कुतः पुण्यानि मित्राणि कुत्रार्थः सांप्रतं मम ।
प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे तत्र याञ्चा कथं भवेत् ॥ ६८ ॥
राज्ञां वृत्तित्रयं प्रोक्तं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम् ।
यदि प्राणान्विमुञ्चामि ह्यप्रदाय च दक्षिणाम् ॥ ६९ ॥
ब्रह्मस्वहाकृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः ।
अथवा प्रेततां यास्ये वर एवात्मविक्रयः ॥ ७० ॥

सूत उवाच—

राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तया नमधोमुखम् ।
प्रत्युवाच तदा पत्नी वाष्पगद्गदया गिरा ॥ ७१ ॥
त्यज चिन्तां महाराज स्वधर्ममनुपालय ।
प्रेतवद्वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः ॥ ७२ ॥
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य च ।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम् ॥ ७३ ॥
अग्निहोत्रमधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः ।
भवन्ति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत् ॥ ७४ ॥
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् ।
तारणायाऽनृतं तद्वत्पतनायाऽकृतात्मनाम् ॥ ७५ ॥
शताश्वमेधानाहृत्य राजसूयं च पार्थिवः ।
कृत्वा राजा सकृत् स्वर्गादसत्यवचनाच्चयुतः ॥ ७६ ॥

राजोवाच—

वंशवृद्धिकरश्चायं पुत्रस्तिष्ठति बालकः ।
उच्यतां वक्तुकामासि यद्वाक्यं गजगामिनि ॥ ७७ ॥

पत्न्युवाच—

राजन् मा भूदसत्यं ते पुंसां पुत्रफलाः स्त्रियः ।

तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥ ७८ ॥

व्यास उवाच—

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः ।
प्रतिलभ्य च संज्ञां वै विललापातिदुःखितः ॥ ७९ ॥
महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि मे ।
किं तव स्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥ ८० ॥
हा हा त्वया कथं योग्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते ।
दुर्वाच्यमेतद्वचनं कथं वदसि भामिनि ॥ ८१ ॥
इत्युक्त्वा नृपतिः श्रेष्ठो न धीरो दारविक्रये ।
निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाऽतिपरिप्लुतः ॥ ८२ ॥
शयानं भुवि तं दृष्ट्वा मूर्च्छयापि महीपतिम् ।
उवाचेदं सुकरुणं राजपुत्री सुदुःखिता ॥ ८३ ॥
हा महाराज कस्येदमपध्यानादुपागतम् ।
यस्त्वं निपतितो भूमौ रङ्कवच्छरणोचितः ॥ ८४ ॥
येनैव कोटिशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम् ।
स एव पृथिवीनाथो भुवि स्वपिति मे पतिः ॥ ८५ ॥
हा कष्टं किं तवानेन कृतं दैव महीक्षिता ।
यदिन्द्रोपेन्द्रतुल्योऽयं नीतः पापामिमां दशाम् ॥ ८६ ॥
इत्युक्त्वा साऽपि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह ।
भर्तुर्दुःखमहाभारेणाऽसह्येनातिपीडिता ॥ ८७ ॥
शिशुर्दृष्ट्वा क्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः ।
तात तात प्रदेह्यन्नं मातर्मे देहि भोजनम् ।
क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रे मेऽतिशुष्यति ॥ ८८ ॥

पत्नी-विक्रयः ।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः ।
अन्तकेन समः क्रुद्धो धनं स्वं याचितुं हृदा ॥ १ ॥
तमालोक्य हरिश्चन्द्रः पपात भुवि मूर्च्छितः ।
स वारिणा तमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र स्वां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ।
ऋणं धारयतां दुःखमहन्यहनि वर्धते ॥ ३ ॥
आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा ।
अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च ॥ ४ ॥
पुनर्मोहं समापेदे ह्यथ क्रोधं ययौ मुनिः ।
समाश्वास्य च राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः ॥ ५ ॥

विश्वामित्र उवाच—

दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धैर्यमवेक्षसे ।
सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ॥ ६ ॥
सत्ये चोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ।
अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥ ७ ॥
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते ।
अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् ॥ ८ ॥
मदीयां दक्षिणां राजन्न दास्यसि भवान् यदि ।
अस्ताचलगते ह्यर्के शप्स्यामि त्वामतो ध्रुवम् ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ।
दुःखीभूतोऽतिप्रदसौ सुदीनो मुनिनार्दितः ॥ १० ॥

सूत उवाच—

एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मणो वेदपारगः ।
ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं निर्ययौ स्वगृहाद्बहिः ॥ ११ ॥

ततो राज्ञी तु तं दृष्ट्वा आयान्तं तापसं स्थितम् ।
उवाच वाक्यं राजानं धर्मार्थसहितं तदा ॥ १२ ॥
त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण मन्यते ।
पितृद्रव्यं हि पुत्रेण ग्रहीतव्यं न संशयः ॥ १३ ॥
तस्मादयं प्रार्थनीयो धनार्थमिति मे मतिः ।

राजोवाच—

नाहं प्रतिग्रहं काङ्क्षे क्षत्रियोऽहं सुमध्यमे ॥ १४ ॥
याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते ।
गुरुर्हि विप्रो वर्णानां पूजनीयोऽस्ति सर्वदा ॥ १५ ॥
तस्माद्गुरुर्न याच्यः स्यात्क्षत्रियाणां विशेषतः ।
यजनाध्ययनंदानं क्षत्रियस्य विधीयते ॥ १६ ॥
शरणागतानामभयं प्रजानां प्रतिपालनम् ।
न चाप्येवं तु वक्तव्यं देहीति कृपणं वचः ॥ १७ ॥
ददामीत्येव मे देवि हृदये निहितं वचः ।
अर्जितं कुत्र चिद्द्रव्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ॥ १८ ॥

पत्न्युवाच—

कालः समविषमकरः परिभवसम्मानमानदः कालः ।
कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारञ्च ॥ १९ ॥
विप्रेण विदुषः राजा क्रुद्धेनातिवलीयसा ।
राज्यान्निरस्तः सौख्याच्च पश्य कालस्य चेष्टितम् ॥ २० ॥

राजोवाच—

असिना तीक्ष्णधारेण वरं जिह्वा द्विधा कृता ।
न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम् ॥ २१ ॥
क्षत्रियोऽहं महाभागेन याचे किंचिदप्यहम् ।
ददामि वाहं नित्यं हि भुजवीर्यार्जितं धनम् ॥ २२ ॥

पत्न्युवाच—

यदि ते हि महाराज याचितुं न क्षमं मनः ।
अहं तु न्यायतो दत्ता देवैरपि सवासवैः ॥ २३ ॥
अहं शास्या च पत्या च रक्ष्या चैव महाद्युते ।
मन्मौल्यं संगृह्णीत्वाथ गुर्वर्थं संप्रदीयताम् ॥ २४ ॥
एतद्वाक्यमुपश्रुत्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः ।
कष्टं कष्टमिति प्रोच्य विललापातिदुःखितः ॥ २५ ॥
भार्या च भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ।
विप्र-शापाग्निदग्धत्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥ २६ ॥

न द्यूतहेतोर्न च मद्य हेतो-
र्न राज्य हेतोर्न च भोगहेतोः ।
ददस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं
सत्यव्रत त्वं सफलं कुरुष्व ॥ २७ ॥

स तया नोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ।
प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं ते सुनिर्घृणः ॥ २८ ॥
नृशंसैरपि यत्कर्त्तुं न शक्यं तत् करोम्यहम् ।
यदि ते भ्राजते वाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम् ॥ २९ ॥
एवमुक्त्वा ततो राजा गत्वा नगरमातुरः ।
अवतार्य तदा रङ्गे तां भार्यां नृपसत्तमः ॥ ३० ॥
वाष्पगद्गदकण्ठस्तु ततो वचनमब्रवीत् ।
भो भो नागरिकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥ ३१ ॥
कस्यचिद्यदि कार्यं स्याद्दास्या प्राणेष्टया मम ।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्स्वं धारयाम्यहम् ॥ ३२ ॥
ते ब्रुवन् पण्डिताः कस्त्वं पत्नीं विक्रेतुमागतः ।

राजोवाच—

किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ।

राक्षसो वास्मि कठिनस्ततः पापं करोम्यहम् ॥ ३३ ॥

व्यास उवाच—

तं शब्दं सहसा श्रुत्वा कौशिको विप्ररूपधृक् ।
वृद्धरूपं समास्थाय हरिश्चन्द्रमभाषत ।
समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥ ३४ ॥
अस्ति मे वित्तमतुलं सुकुमारी च मे प्रिया ।
गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ मे ॥ ३५ ॥
अहं गृह्णामि दासीं तु कति दास्यामि ते धनम् ।
एवमुक्ते तु विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ॥ ३६ ॥
विदीर्णं तु मनो दुःखान्न चैनं किंचिदब्रवीत् ।

विप्र उवाच—

कर्मणश्च वयोरूपशीलानां तव योषितः ॥ ३७ ॥
अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम् ।
धर्मशास्त्रेषु यद् दृष्टं स्त्रियो मौल्यं नरस्य च ॥ ३८ ॥
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ।
कोटिमौल्यं सुवर्णस्य स्त्रियः पुंसस्तथार्बुदम् ॥ ३९ ॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः ।
दुःखेन महताविष्टो न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ ४० ॥
ततः स विप्रः नृपतेः पुरतो वल्कलोपरि ।
धनं निधाय केशेषु धृत्वा राज्ञीमकर्षयत् ॥ ४१ ॥

राज्ञ्युवाच—

मुञ्च मुञ्चाऽऽर्य मां सद्यो यावत्पश्याम्यहं सुतम् ।
दुर्लभं दर्शनं विप्र पुनरस्य भविष्यति ॥ ४२ ॥
पश्येह पुत्र मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ।
मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र न स्पृश्याहं त्वयाधुना ॥ ४३ ॥
ततः स बालः सहसा दृष्ट्वा कष्टां तु मातरम् ।

समभ्यधावदम्बेति वदन्साश्रुविलोचनः ॥ ४४ ॥
हस्ते वस्त्रं समाकर्षन्काकपक्षधरः स्खलन् ।
तमागतं द्विजः क्रोधाद्बालमभ्याहनत्तदा ॥ ४५ ॥
वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैव मुञ्चति मातरम् ।

राज्युवाच—

प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं हि बालकम् ॥ ४६ ॥
क्रीतापि नाहं भविता विनैनं कार्यसाधिका ।
इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ ४७ ॥

ब्राह्मण उवाच—

गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां मम बालकम् ।
स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम् ॥ ४८ ॥
शतं सहस्रं लक्षं च कोटि मौल्यं तथापरैः ।
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ॥ ४९ ॥
कोटिमौल्यं स्त्रियः प्रोक्तं पुरुषस्य तथार्बुदम् ।

सूत उवाच—

तथैव तस्य तद्वित्तं पुरः क्षिप्तं पटे पुनः ॥ ५० ॥
प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत् ।
प्रतस्थे स गृहं क्षिप्रं तया सह मुदान्वितः ॥ ५१ ॥
प्रदक्षिणां तु सा कृत्वा जानुभ्यां प्रणता स्थिता ।
वाष्पपर्याकुला दीना त्विदं वचनमब्रवीत् ॥ ५२ ॥
यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि ।
तेन पुण्येन मे भर्त्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु वै पुनः ॥ ५३ ॥
पादयोः पतितां दृष्ट्वा प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।
हा हेति च वदन्राजा विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ५४ ॥
वियुक्तेयं कथं जाता सत्यशीलगुणान्विता ।
वृक्षच्छायाऽपि वृक्षं तं न जहाति कदाचन ॥ ५५ ॥

एवं भार्यां वदित्वाऽथ सुसंबद्धं परस्परम् ।
पुत्रं च तमुवाचेदं मां त्वं हित्वा क यास्यसि ॥ ५६ ॥
कां दिशं प्रति यास्यामि को मे दुःखं निवारयेत् ।
राजत्यागे न मे दुःखं वनवासे न मे द्विज ॥ ५७ ॥
यत्पुत्रवियोगे हि मे एवमाह स भूपतिः ।
सद्भर्तृभोग्या हि सदा लोके भार्या भवन्ति हि ॥ ५८ ॥
मया त्यक्ताऽसि कल्याणि दुःखेन विनियोजिता ।
इक्ष्वाकुवंशसंभूतं सर्वराज्यसुखोचितम् ॥ ५९ ॥
मामीदृशं पतिं प्राप्य दासीभावं गता ह्यसि ।
ईदृशं मज्जमानं मां सुमहच्छोकसागरे ॥ ६० ॥

सूत उवाच—

पश्यतस्तस्य राजर्षेः कशाघातैः सुदारुणैः ।
घातयित्वा तु विप्रेशो नेतुं समुपचक्रमे ॥ ६१ ॥
नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ स पार्थिवः ।
विललापातिदुःखार्तो निश्वस्योष्णं पुनः पुनः ॥ ६२ ॥
यां न वायुर्न वाऽऽदित्यो न चन्द्रो न पृथग्जनाः
दृष्टवन्तः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ॥ ६३ ॥
हा प्रिये हा शिशो वत्स ममाऽनार्यस्य दुर्नयः ।
दैवाधीन दशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ॥ ६४ ॥

व्यास उवाच—

एवं विलपतो राज्ञोऽग्रे विप्रोऽन्तरधीयत ।
अत्रान्तरे मुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाम महातपाः ॥ ६५ ॥
स शिष्यः कौशिकेन्द्रोऽसौ निष्ठुरः क्रूरदर्शनः ।

विश्वामित्र उवाच—

या त्वयोक्ता पुरा राजन् राजसूयस्य दक्षिणा ।
तां ददस्व महाबाहो यदि सत्यं पुरस्कृतम् ॥ ६६ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

नमस्करोमि राजर्षे गृहाणेमां स्वदक्षिणाम् ।
राजसूयस्य यागस्य या मयोक्ता पुराऽनघ ॥ ६७ ॥

विश्वामित्र उवाच—

कुतो लब्धमिदं द्रव्यं दक्षिणार्थे प्रदीयते ।
एतदाचक्ष्व राजेन्द्र यथा द्रव्यं त्वयार्जितम् ॥ ६८ ॥

राजोवाच—

किमनेन महाभाग कथितेन तवाऽनघ ।
शोकस्तु वर्धते विप्र श्रुतेनानेन सुव्रत ॥ ६९ ॥

ऋषिरुवाच—

अशस्तं नैव गृह्णामि शस्तमेव प्रयच्छ मे ।
द्रव्यस्याऽऽगमनं राजन्कथयस्व यथातथम् ॥ ७० ॥

राजोवाच—

मया देवी तु सा भार्या विक्रीता कोटिसम्मितैः ।
निष्कैः पुत्रो रोहिताख्यो विक्रीतोऽर्बुदसंख्यया ॥ ७१ ॥

सूत उवाच—

तद्वित्तं स्वल्पमालक्ष्य दारविक्रयसंभवम् ।
शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ७२ ॥

ऋषिरुवाच—

राजसूयस्य यज्ञस्य नैषा भवति दक्षिणा ।
अन्यदुत्पादय क्षिप्रं संपूर्णा येन सा भवेत् ॥ ७३ ॥
क्षत्रबन्धो ममेमां त्वं सदृशीं यदि दक्षिणाम् ।
मन्यसे तर्हि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे परं बलम् ॥ ७४ ॥
तपसोऽस्य सुतप्तस्य ब्राह्मणस्याऽमलस्य च ।
मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याऽध्ययनस्य च ॥ ७५ ॥

राजोवाच—

अन्यद्दास्यमि भगवन् कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यताम् ।
अधुनैवास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥ ७६ ॥

विश्वामित्र उवाच—

चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप ।
एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ॥ ७७ ॥

स्व-विक्रयः ।

व्यास उवाच—

तमेवमुक्त्वा राजानं निर्घृणं निष्ठुरं वचः ।
तदादाय धनं पूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥ १ ॥
विश्वामित्रेगते राजा ततः शोकमुपागतः ।
श्वासोच्छ्वासं मुहुः कृत्वा प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ २ ॥
कस्यचिद्यदि कार्यं स्याद्दासेन प्रेतेन मया ।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो या मे तिष्ठति भास्करः ॥ ३ ॥
अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चांडालरूपधृक् ।
दुर्गन्धो विकृतोरस्कः श्मश्रुलो दन्तुरोऽघृणी ॥ ४ ॥
कृष्णो लम्बोदरः स्निग्धः करालः पुरुषाधमः ।
हस्तजर्जरयष्टिश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥ ५ ॥

चांडाल उवाच—

अहं गृह्णामि दासत्वे भृत्यार्थः सुमहान्मम ।
क्षिप्रमाचक्ष्व मौल्यं किमेतत्ते संप्रदीयते ॥ ६ ॥

व्यास उवाच—

तं तादृशमथाऽऽलक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिर्घृणम् ।
वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥ ७ ॥

चांडाल उवाच—

चांडालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति नृपोत्तम।
शासने सर्वदा तिष्ठ मृतचैलापहारकः॥ ८॥
एवमुक्तस्तदा राजा वचनं चेदमब्रवीत्।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि गृह्णात्विति मतिर्मम॥ ९॥
उत्तमस्योत्तमो धर्मो मध्यमस्य च मध्यमः।
अधमस्याधमश्चैव इति प्राहुर्मनीषिणः॥ १०॥

चांडाल उवाच

एवमेव त्वयाऽधर्मः कथितो नृपसत्तम।
अविचार्य त्वया राजन्नधुनोक्तं ममाग्रतः॥ ११॥
विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः।
सामान्यमेव तत्प्रोक्तमविचार्य त्वयाऽनघ॥ १२॥
यदि सत्यं प्रमाणं ते गृहीतोऽसि न संशयः।

हरिश्चन्द्र उवाच—

असत्यान्नरके गच्छेत् सद्यः क्रूरे नराधमः॥ १३॥
ततश्चांडालता साध्वी न वरा मे ह्यसत्यता।

व्यास उवाच—

तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः॥ १४॥
क्रोधामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम्।
चांडालोऽयं मनस्थं ते दातुं वित्तमुपस्थितः॥ १५॥
कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा।

राजोवाच—

भगवन् सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक॥ १६॥
कथं चांडालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामतः।

विश्वामित्र उवाच—

यदि चांडालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम॥ १७॥

न प्रदास्यसि चेत्तर्हि शप्स्यामि त्वामसंशयम् ।
चांडालादथवा विप्राद्देहि मे दक्षिणाधनम् ॥ १८ ॥
विना चांडालमधुना नान्याः कश्चिद्धनप्रदः ।
धनेनाऽहं विना राजन्न यास्यामि न संशयः ॥ १९ ॥
इदानीमेव मे वित्तं न प्रदास्यसि चेन्नृप ।
दिनेऽर्धघटिकाशेषे तत्त्वां शापाग्निना दहे ॥ २० ॥

व्यास उवाच—

हरिश्चन्द्रस्ततो राजा मृतवच्छ्रुतजीवितः ।
प्रसीदेति वदन् पादौ ऋषेर्जग्राह विह्वलः ॥ २१ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि दीनोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ।
प्रसादं कुरु विप्रर्षे कष्टश्चांडालसंकरः ॥ २२ ॥
भवेयं वित्तशेषेण तव कर्मकरो वशः ।
तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः ॥ २३ ॥

विश्वामित्र उवाच—

एवमस्तु महाराज ममैव भव किंकरः ।
किं तु मद्वचनं कार्यं सर्वदैव नराधिप ॥ २४ ॥

व्यास उवाच—

एवमुक्तेऽथ वचने राजा हर्षसमन्वितः ।
अमन्यत पुनर्जातमात्मानं प्राह कौशिकम् ॥ २५ ॥
तवादेशं करिष्यामि सदैवाऽहं न संशयः ।
आदेशय द्विज श्रेष्ठ किं करोमि तवानघ ॥ २६ ॥

विश्वामित्र उवाच—

चांडालागच्छ मद्दासमौल्यं किं मे प्रयच्छसि ।
गृहाण दासं मौल्येन मया दत्तं तवाधुना ॥ २७ ॥
नास्ति दासेन मे कार्यं वित्ताशा वर्तते मम ।

व्यास उवाच—

एवमुक्ते तदा तेन श्वपचो हृष्टमानसः ॥ २८ ॥
आगत्य सन्निधौ तूर्णं विश्वामित्रमभाषत ।

चांडाल उवाच—

दशयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य च मण्डले ॥ २९ ॥
भूमिं रत्नमयीं कृत्वा दास्ये तेऽहं द्विजोत्तम ।
अस्य विक्रयणेनेयमार्तिश्च प्रहृता त्वया ॥ ३० ॥

व्यास उवाच—

ततो रत्नसहस्राणि सुवर्णमणिमौक्तिकैः ।
चांडालेन प्रदत्ता निजग्राह द्विजसत्तमः ॥ ३१ ॥
हरिश्चन्द्रस्तथा राजा निर्विकारमुखोऽभवत् ।
अमन्यत तथा धैर्याद्विश्वामित्रो हि मे पतिः ॥ ३२ ॥
तत्तदेव मया कार्यं यदयं कारयिष्यति ।
अथान्तरिक्षे सहसा वागुवाचाऽशरीरिणी ॥ ३३ ॥
अनृणोऽसि महाभाग दत्ता सा दक्षिणा त्वया ।
ततो दिवः पुष्पवृष्टिः पपात नृपमूर्धनि ॥ ३४ ॥
साधु साध्विति तं देवाः प्रोचुः सेन्द्रा महौजसः ।
हर्षेण महताऽऽविष्टो राजा कौशिकमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

राजोवाच—

त्वं हि माता पिता चैव त्वं हि बन्धुर्महामते ।
यदर्थं मोचितोऽहं ते क्षणाच्चैवऽनृणीकृतः ॥ ३६ ॥
किं करोमि महाबाहो श्रेयो मे वचनं तव ।
एवमुक्ते तु वचने नृपं मुनिरभाषत ॥ ३७ ॥

विश्वामित्र उवाच—

चांडालवचनं कार्यमद्यप्रभृति ते नृप ।
स्वस्ति तेऽस्त्विति तं प्रोच्य तदाऽऽदाय धनं ययौ ॥ ३८ ॥

स्व-कृत्यम् ।

सूत उवाच—

विश्वामित्रे गते विप्रे श्वपचो हृष्टमानसः ।
विश्वामित्राय तद् द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम् ॥ १ ॥
असत्यो यास्यसीत्युक्त्वा दण्डेनाऽताडयत्तदा ।
दण्डप्रहारसंभ्रांतमतीवव्याकुलेन्द्रियम् ॥ २ ॥
इष्टबन्धुवियोगार्तमानीय निजपक्कणे ।
निगडे स्थापयित्वा तं स्वयं सुष्वाप विज्वरः ॥ ३ ॥
निगडस्थस्ततो राजा वसंश्चांडालपक्कणे ।
अन्नपाने परित्यज्य सदा वै तदशोचयत् ॥ ४ ॥
तन्वी दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः ।
मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोक्षयिष्यति नौ नृपः ॥ ५ ॥
उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तं प्रतिश्रुतम् ।
रोदमानं सुतं वीक्ष्य मां च संबोधयिष्यति ॥ ६ ॥
तातपार्श्वे व्रजामीति रुदन्तं बालकं पुनः ।
तात तातेति भाषन्तं तथा सम्बोधयिष्यति ॥ ७ ॥
न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति चांडालतां गतम् ।
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ ८ ॥
ततश्चांडालता चेयमहो दुःखपरम्परा ।
एवं स निवसन्नित्यं स्मरंश्च दयितां सुतम् ॥ ९ ॥
निनाय दिवसान्राजा चतुरो विधिपीडितः ।
अथाऽह्नि पञ्चमे तेन निगडान्मोचितो नृपः ॥ १० ॥
चाण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारणे ।
क्रुद्धेन परुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ॥ ११ ॥
काश्याश्च दक्षिणे भागे श्मशानं विद्यते महत् ।

तद्व्रतस्व यथान्यायं न त्याज्यं तत्त्वया क्वचित् ॥ १२ ॥
इमं च जर्जरं दण्डं गृहीत्वा याहि मा चिरम् ।
वीरबाहोरयं दंड इति घोषस्व सर्वतः ॥ १३ ॥

सूत उवाच—

कस्मिंश्चिदथ काले तु मृतचैलापहारकः
हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥ १४ ॥
चाण्डालेनानुशिष्टस्तु मृतचैलापहारिणा ।
राजा तेन समादिष्टो जगाम शवमन्दिरम् ॥ १५ ॥
पुर्यास्तु दक्षिण देशे विद्यमानं भयानकम् ।
शवमाल्यसमाकीर्णं दुर्गन्धबहुधूमकम् ॥ १६ ॥
श्मशानं घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम् ।
गृध्रगोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम् ॥ १७ ॥
अस्थिसंघातसंकीर्णं महादुर्गंधसंकुलम् ।
अर्धदग्धशवास्यानि विकसद्दंतपंक्तिभिः ॥ १८ ॥
हसन्तीवाऽग्निमध्यस्थकायस्यैवं व्यवस्थितिः ।
नानामृतसुहृन्नादं महाकोलाहलाकुलम् ॥ १६ ॥
हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाऽद्य मे ।
हाप्यते भागिनेयाऽर्ह हा मातुल पितामह ॥ २० ॥
मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बान्धव ।
इति शब्दैः समाकीर्णं भैरवैः सर्वदेहिनाम् ॥ २१ ॥
ज्वलन्मांसवसामेदच्छूमितिध्वनिसंकुलम् ।
अग्नेश्चटचटाशब्दो भैरवो यत्र जायते ॥ २२ ॥
कल्पान्तसदृशाकारं श्मशानं तत्सुदारुणम् ।
स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखादेवमशोच यत् ॥ २३ ॥
हा भृत्या मन्त्रिणो यूयं क्व तद्राज्यं कुलोचितम् ।
हा प्रिये पुत्र मे बाल मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम् ॥ २४ ॥

ब्राह्मणस्य च कोपेन गता यूयं क्व दूरतः ।
विनाधर्मं मनुष्याणां जायते न शुभं क्वचित् ॥ २५ ॥
यत्नतो धारयेत्तस्मात्पुरुषो धर्ममेव हि ।
इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चाण्डालोक्तं पुनः पुनः ॥ २६ ॥
मलेन दिग्धसर्वाङ्गः शवानां दर्शने व्रजन् ।
लकुटाकारकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ॥ २७ ॥
असिन्छव इदं मौल्यं शतं प्राप्स्यामि चाऽग्रतः ।
इदं मम इदं राज्ञ इदं चाण्डालकस्य च ॥ २८ ॥
इत्येवं चिन्तयन्राजा व्यवस्थां दुस्तरां गतः ।
जीर्णैकपटसुग्रंथिकृतकंथापरिग्रहः ॥ २९ ॥
चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ।
नानामेदोवसामज्जालिप्ताप्यङ्गुलिः श्वसन् ॥ ३० ॥
नानाशवौदनकृतक्षुन्निवृत्तिपरायणः ।
तदीय माल्यसंश्लेषकृतमस्तकमंडलः ॥ ३१ ॥
न रात्रौ न दिवा शेते हा हेति प्रवदन्मुहुः ।
एवं द्वादश मासास्तु नीता वर्ष शतोपमाः ॥ ३२ ॥

रोहित-मृत्युः ।

सूत उवाच—

एकदा तु गतो रंतुं बालकैः सहितो बहिः ।
वाराणस्या नातिदूरे रोहिताख्यः कुमारकः ॥ १ ॥
क्रीडां कृत्वा ततो दर्भान् ग्रहीतुमुपचक्रमे ।
कोमलानल्पमूलांश्च साग्रान्छिन्नन्यनुसारतः ॥ २ ॥
आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वा हस्तयुग्मेन यत्नतः ।
सलक्षणाश्च समिधो बर्हिरिध्मं सलक्षणम् ॥ ३ ॥

पलाशकाष्ठान्यादाय त्वग्निहोमार्थमादरात् ।
मस्तके भारकं कृत्वा खिद्यमानः पदे पदे ॥ ४ ॥
उदकस्थानमासाद्य तदा बालस्तृषान्वितः ।
भुवि भारं विनिक्षिप्य जलस्थाने तदा शिशुः ॥ ५ ॥
कामतः सलिलं पीत्वा विश्रम्य च मुहूर्तकम् ।
वल्मीकोपरि विन्यस्तभारो हर्त्तुं प्रचक्रमे ॥ ६ ॥
विश्वामित्राज्ञया तावत् कृष्णसर्पो भयावहः ।
महाविषो महाघोरो वल्मीकान्निर्गतस्तदा ॥ ७ ॥
तेनाऽसौ बालको दष्टस्तदैव च पपात ह ।
रोहिताख्यं मृतं दृष्ट्वा ययुर्बाला द्विजालयम् ॥ ८ ॥
त्वरिता भय-संविग्नाः प्रोचुस्तन्मातुरग्रतः ।
हे विप्रदासि ते पुत्रः क्रीडां कर्त्तुं बहिर्गतः ॥ ९ ॥
अस्माभिः सहितस्तत्र सर्पदष्टो मृतस्ततः ।
इति सा तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥ १० ॥
पपात मूर्च्छिता भूमौ छिन्नेव कदली यथा ।
अथ तां ब्राह्मणो रुष्टः सुजलेनाऽभ्यषिंचत ॥ ११ ॥
मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्ता ब्राह्मणस्तामथाब्रवीत् ।

ब्राह्मण उवाच—

अलक्ष्मीकारकं निन्द्यं जानीहि त्वं निशामुखे ॥ १२ ॥
रोदनं कुरुषे दुष्टे लज्जाति हृदये न किम् ।
ब्राह्मणेनैवमुक्ता सा न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥
रुरोद करुणं दीना पुत्रशोकेन पीडिता ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना धूसरा मुक्तमूर्द्धजा ॥ १४ ॥
अथ तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ।
धिक् त्वां दुष्टे कथं गृह्य मम कार्यं विलुम्पसि ॥ १५ ॥

अशक्ता चेत्कथं तर्हि गृहीतं मम तद्धनम् ।
एवं निर्भर्त्सिता तेन क्रूरवाक्यैः पुनः पुनः ॥ १६ ॥
रुदिता कारणं प्राह विप्रं गद्गदया गिरा ।
स्वामिन् मम सुतो बालः सर्पदष्टो मृतो बहिः ॥ १७ ॥
अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व द्रष्टुं यास्यामि बालकम् ।
दुर्लभं दर्शनं तेन संजातं मम सुव्रत ॥ १८ ॥
इत्युक्त्वा करुणं बाला पुनरेव रुरोद ह ।
पुनस्तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥ १६ ॥

ब्राह्मण उवाच—

शठे दुष्टसमाचारे किं न जानासि पातकम् ।
यः स्वामिवेतनं गृह्य तस्य कार्यं विलुम्पति ॥ २० ॥
नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ।
उषित्वा नरके कल्पं ततोऽसौ कुक्कुटो भवेत् ॥ ३१ ॥
किमनेनाऽथवा कार्यं धर्मसंकीर्तनेन मे ।
यस्तु पापरतो मूर्खः क्रूरो नीचोऽनृतः शठः ॥ २२ ॥
तद्वाक्यं निष्फलं तस्मिन् भवेद्बीजमिवोषरे ।
एहि ते विद्यते किंचित् परलोकभयं यदि ॥ २३ ॥
एवमुक्ताथ सा विप्रं वेपमानाऽब्रवीद्वचः ।
कारुण्यं कुरु मे नाथ प्रसीद सुमुखो भव ॥ २४ ॥
प्रस्थापय मुहूर्तं मां यावद् द्रक्ष्यामि बालकम् ।
एवमुक्त्वाऽथ सा मूर्ध्ना निपत्य द्विजपादयोः ॥ २५ ॥
रुरोद करुणं बाला पुत्रशोकेन पीडिता ।
अथाह कुपितो विप्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २६ ॥

विप्र उवाच—

किं ते पुत्रेण मे कार्यं गृहकर्म कुरुष्व मे ।
किं न जानासि मे क्रोधं कशाघातफलप्रदम् ॥ २७ ॥

एवमुक्त्वा स्थिता धैर्याद् गृहकर्म चकार ह ।
अर्धरात्रो गतस्तस्याः पादाभ्यंगादिकर्मणा ॥ २८ ॥
ब्राह्मणेनाऽथ सा प्रोक्ता पुत्रपार्श्वे व्रजाऽधुना ।
तस्य दाहादिकं कृत्वा पुनरागच्छ सत्वरम् ॥ २९ ॥
न लुप्येत यथा प्रातर्गृहकर्म ममेति च ।
ततस्त्वेकाकिनी रात्रौ विलपन्ती जगाम सा ॥ ३० ॥
दृष्ट्वा मृतं निजपुत्रं भृशं शोकेनपीडिता ।
यूथभ्रष्टा कुरंगीव विवत्सा सौरभी यथा ॥ ३१ ॥
वाराणस्या वर्हिगत्वा क्षणाद् दृष्ट्वा निजं सुतम् ।
शयानं रंकवद् भूमौ काष्ठदर्भतृणोपरि ॥ ३२ ॥
विललापातिदुःखार्ता शब्दं कृत्वा सुनिष्ठुरम् ।
एहि मे सम्मुखं कस्माद्रोषितोऽसि वदाऽधुना ॥ ३३ ॥
आयास्याभिमुखो नित्यमम्बेत्युक्त्वा पुनः पुनः ।
गत्वा स्खलत्पदा तस्य पपातोपरि मूर्च्छिता ॥ ३४ ॥
पुनः सा चेतनां प्राप्य दोर्भ्यामालिंग्य बालकम् ।
तन्मुखे वदनं न्यस्य रुरोदाऽऽर्तस्वनैस्तदा ॥ ३५ ॥
कराभ्यां ताडनं चक्रे मस्तकस्योदरस्य च ।
हा बाल हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर ॥ ३६ ॥
हा राजन्क गतोऽसि त्वं पश्येमं बालकं निजम् ।
प्राणेभ्योऽपि गरीयांसं भूतले पतितं मृतम् ॥ ३७ ॥
तथाऽपश्यन्मुखं तस्य भूयो जीवित शंकया ।
निर्जीववदनं ज्ञात्वा मूर्च्छिता निपपात च ॥ ३८ ॥
हस्तेन वदनं गृह्य पुनरेवमभाषत ।
शयनं त्यज हे बाल शीघ्रं जागृहि भीषणम् ॥ ३९ ॥
निशार्धे वर्धते चेदं शिवाशतनिनादितम् ।
भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥ ४० ॥

मित्राणि ते गतान्यस्तात्त्वमेकस्तु कुतः स्थितः ।

सूत उवाच—

एवमुक्त्वा पुनस्तन्वी करुणं प्ररुरोद ह ॥ ४१ ॥
हा शिशो बाल हा वत्स रोहिताख्य कुमारक ।
रे पुत्र प्रतिशब्दं मे कस्मात्त्वं न प्रयच्छसि ॥ ४२ ॥
तवाऽहं जननी वत्स किं न जानासि पश्य माम् ।
देशत्यागाद्राज्यनाशात् पुत्र भर्त्रा स्वविक्रयात् ॥ ४३ ॥
यद्दासीत्वाच्च जीवामि त्वां दृष्ट्वा पुत्र केवलम् ।
ते जन्मसमये विप्रैरादिष्टं यत्त्वमागतम् ॥ ४४ ॥
दीर्घायुः पृथिवीराजः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
शौर्यदानरतिःसत्त्वो गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ ४५ ॥
मातापित्रोस्तु प्रियकृत् सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
इत्यादि सकलं जातमसत्यमधुना सुत ॥ ४६ ॥
चक्रमत्स्यावातपत्रश्रीवत्सस्वास्तिकध्वजाः ।
तव पाणितले पुत्र कलशश्चामरं तथा ॥ ४७ ॥
लक्षणानि तथाऽन्यानि त्वद्धस्ते यानि सन्ति च ।
तानि सर्वाणि मोघानि सञ्जातान्यधुना सुत ॥ ४८ ॥
हा राजन् पृथिवीनाथ क्व ते राज्यं क्व मन्त्रिणः ।
क्व ते सिंहासनं छत्रं क्व ते खड्गः क्व तद्धनम् ॥ ४९ ॥
क्व साऽयोध्या क्व हर्म्याणि क्व गजाश्वरथप्रजाः ।
सर्वमेतत्तथा पुत्र मां त्यक्त्वा क्व गतोऽसि रे ॥ ५० ॥
हा कान्त हा नृपाऽऽगच्छ पश्येमं स्वसुतं प्रियम् ।
येन ते रिङ्गता वक्षः कुंकुमेनाऽवलेपितम् ॥ ५१ ॥
स्वशरीरजः पंकैर्विशालं मलिनीकृतम् ।
येन ते बालभावेन मृगनाभिविलेपितः ॥ ५२ ॥
भ्रंशितो भालतिलकस्त्वाङ्कस्थेन भूपते ।

यस्य वक्त्रं मृदालिप्तं स्नेहार्द्रे चुम्बितं मया ॥ ५३ ॥
तन्मुखं मत्तिकालिङ्गथं पश्ये कीटैर्विदूषितम् ।
हा राजन् पश्य तं पुत्रं भुविस्थं रंकवन्मृतम् ॥ ५४ ॥
हा देव किं मया कृत्यं कृतं पूर्वभवान्तरे ।
तस्य कर्मफलस्येह न पारमुपलक्षये ॥ ५५ ॥
हा पुत्र हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर ।
एवं तस्या विलापं ते श्रुत्वा नगरपालकाः ॥ ५६ ॥
जागृतास्त्वरितास्तस्याः पार्श्वमीयुः सुविस्मिताः ।

जना ऊचुः—

का त्वं बालश्च कस्याऽयं पतिस्ते कुत्र तिष्ठति ॥ ५७ ॥
एकैव निर्भया रात्रौ कस्मात्त्वमिह रोदिषि ।
एवमुक्त्वाऽथ सा तन्वी न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५८ ॥
भूयोऽपि पृष्टा सा तूष्णीं स्तब्धीभूता बभूव ह ।
विललापाऽतिदुःखार्ता शोकाश्रुप्लुतलोचना ॥ ५९ ॥
अथ ते शंकितास्तस्यां रोमाञ्चिततनूरुहाः ।
संत्रस्ताः प्राहुरन्योऽन्यमुद्धृतायुधपाणयः ॥ ६० ॥
नूनं स्त्री न भवत्येषा यतः किंचिन्न भाषते ।
तस्माद्वध्या भवेदेषा यत्नतो बालघातिनी ॥ ६१ ॥
शुभा चेत्तर्हि किं ह्यत्र निशार्धे तिष्ठते बहिः ।
भक्षार्थमनया नूनमानीतः कस्यचिच्छिशुः ॥ ६२ ॥
इत्युक्त्वा तैर्गृहीता सा गाढं केशेषु सत्वरम् ।
भुजयोरपरैश्चैव कैश्चाऽपि गलके तथा ॥ ६३ ॥
खेचरी यास्यतीत्युक्तं बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ।
आकृष्य पक्कणे नीता चांडालाय समर्पिता ॥ ६४ ॥
हे चांडाल बहिर्दृष्टा ह्यसाभिर्बालघातिनी ।
वध्यतां वध्यतामेषा शीघ्रं नीत्वा बहिः स्थले ॥ ६५ ॥

चांडालः प्राह तां दृष्ट्वा ज्ञातेयं लोकविश्रुता ।
न दृष्टपूर्वा केनाऽपि लोकडिम्भान्यनेकधा ॥ ६६ ॥
भक्षितान्यनया भूरि भवद्भिः पुण्यमर्जितम् ।
ख्यातिर्वः शाश्वती लोके गच्छध्वं च यथासुखम् ॥ ६७ ॥
द्विजस्त्रीबालगोघातीस्वर्णस्तेयी च यो नरः ।
अग्निदो वर्त्मघाती च मद्यपो गुरुतल्पगः ॥ ६८ ॥
महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदो वधः ।
द्विजस्याऽपि स्त्रियो वाऽपि न दोषो विद्यते वधे ॥ ६९ ॥
अस्या वधश्च मे योग्य इत्युक्त्वा गाढबंधनैः ।
बद्ध्वा केशेष्वथाऽऽकृश्य रज्जुभिस्तामताडयत् ॥ ७० ॥
हरिश्चन्द्रमथोवाच वाचा परूषया तदा ।
रे दास वध्यतामेषा दुष्टात्मा मा विचारय ॥ ७१ ॥
तद्वाक्यं भूपतिः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ।
वेपमानोऽथ चांडालं प्राह स्त्रीवधशंकितः ॥ ७२ ॥
न शक्तोऽहमिदं कर्त्तुं प्रेष्यं देहि ममाऽपरम् ।
असाध्यमपि यत्कर्म तत् करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७३ ॥
श्रुत्वा तदुक्तं वचनं श्वपचो वाक्यमब्रवीत् ।
मा भैषीस्त्वं गृहाणाऽसिं वधोऽस्याः पुण्यदो मतः ॥ ७४ ॥
बालानामेव भयदानेयं रक्ष्या कदाचन ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ ७५ ॥
स्त्रियो रक्ष्याः प्रयत्नेन न हन्तव्याः कदाचन ।
स्त्रीवधे कीर्तितं पापं मुनिभिर्धर्मतत्परैः ॥ ७६ ॥
पुरुषो यः स्त्रियं हन्याज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ ७७ ॥

चांडाल उवाच—

मा वदाऽसिं गृहाणैनं तीक्ष्णविद्युत्समप्रभम् ।

यत्रैकस्मिन्वधं नीते वहूनां तु सुखं भवेत् ॥ ७८ ॥
तस्य हिंसा कृता नूनं बहु पुण्य प्रदा भवेत् ।
भक्षितान्यनया भूरि लोके डिम्भानि दुष्टया ॥ ७९ ॥
तत्क्षिप्रं वध्यतामेषा लोकः स्वस्थो भविष्यति ।

राजोवाच—

चांडालाधिपते तीव्रं व्रतं स्त्रीवधवर्जनम् ॥ ८० ॥
आजन्मतस्ततो यत्नं न कुर्यां स्त्रीवधे तव ।

चांडाल उवाच—

स्वामिकार्यं विना दुष्ट किं कार्यं विद्यते परम् ॥ ८१ ॥
गृहीत्वा वेतनं मेऽद्य कस्मात् कार्यं विलुम्पसि ।
यः स्वामिवेतनं गृह्य स्वामिकार्यं विलुम्पति ॥ ८२ ॥
नरकान्निष्कृतिस्तस्य नास्ति कल्पायुतैरपि ।

राजोवाच—

चांडालनाथ मे देहि कार्यमन्यत्सुदारुणम् ॥ ८३ ॥
स्वशत्रुं ब्रूहि तं क्षिप्रं घातयिष्याम्यसंशयम् ।
घातयित्वा तु तं शत्रुं तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ८४ ॥
देवदेवोरगैः सिद्धैर्गन्धर्वैरपि संयुतम् ।
देवेन्द्रमपि जेष्यामि निहत्य निशितैः शरैः ॥ ८५ ॥
एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ।
चांडालः कुपितः प्राह वेपमानं महीपतिम् ॥ ८६ ॥

चांडाल उवाच—

"नैतद्वाक्यं सुघटितं यद्वाक्यं दासकीर्तितम्" ।
चांडालदासतां कृत्वा सुराणां भाषसे वचः ।
दास किं वहुना नूनं शृणु मे गदतो वचः ॥ ८७ ॥
निर्लज्ज तव चेदस्ति किंचित् पापभयं हृदि ।
किमर्थं दासतां यातश्चांडालस्य तु वेष्मनि ॥ ८८ ॥

गृहाणैनं ततः खड्गमस्याश्छिन्धि शिरोऽम्बुजम् ।
एवमुक्त्वाऽथ चांडालो राज्ञे खड्गं न्यवेदयत् ॥ ८९ ॥

पुनर्मिलनम् ।

सूत उवाच—

ततोऽथ भूपतिः प्राह राज्ञीं स्थित्वा ह्यधोमुखः ।
अत्रोपविश्यतां बाले पापस्य पुरतो मम ॥ १ ॥
शिरस्ते च्छेदयिष्यामि हन्तुं शक्नोति चेत्करः ।
एवमुक्त्वा समुद्यम्य खड्गं हन्तुं गतो नृपः ॥ २ ॥
न जानाति नृपः पत्नीं सा न जानाति भूपतिम् ।
अब्रवीद् भृशदुःखार्ता स्वमृत्युमभिकांक्षती ॥ ३ ॥

राज्युवाच—

चांडाल शृणु मे वाक्यं किंचित्त्वं यदि मन्यसे ।
मृतस्तिष्ठति मे पुत्रो नाऽतिदूरे बहिः पुरात् ॥ ४ ॥
तं दहामि हतं यावदानयित्वा तवान्तिकम् ।
तावत्प्रतीक्ष्य तां पश्चादसिना घातयस्व माम् ॥ ५ ॥
तेनाऽथ बाढमित्युक्त्वा प्रेषिता बालकं प्रति ।
सा जगामाऽतिदुःखार्ता विलपन्ती सुदारुणम् ॥ ६ ॥
भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् ।
हा पुत्र हा वत्स शिशो इत्येवं वदती मुहुः ॥ ७ ॥
कृशा विवर्णा मलिना पांसुध्वस्तशिरोरुहा ।
श्मशानभूमिमागत्य बालं स्थाप्याऽविशद् भुवि ॥ ८ ॥
"राजन्नद्य स्वबालं तं पश्यसीह महीतले ।
रममाणं स्वसखिभिर्दष्टं दुष्टाऽहिना मृतम् ॥ ९ ॥"
तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः ।
शवसन्निधिमागत्य वस्त्रमस्याऽऽक्षिपत्तदा ॥ १० ॥

तां तथा रुदतीं भार्यां नाभिजानाति भूमिपः ।
चिरप्रवाससंतप्तां पुनर्जातामिवाऽबलाम् ॥ ११ ॥
साऽपि तं चारुकेशान्तं पुरो दृष्ट्वा जटालकम् ।
नाऽभ्यजानान्नृपवरं शुष्कवृक्षत्वचोपमम् ॥ १२ ॥
भूमौ निपतितं बालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम् ।
नरेन्द्रलक्षणोपेतमचिन्तयदसौ नृपः ॥ १३ ॥
अस्य पूर्णेन्दुवद्वक्त्रं शुभमुन्नसमव्रणम् ।
दर्पणप्रतिमोत्तुंगकपोलयुगशोभितम् ॥ १४ ॥
नीलान्केशान् कुञ्चिताग्रान्सान्द्रान्दीर्घांस्तरंगिणः ।
राजीव सदृशे नेत्रे ओष्ठौ विम्वफलोपमौ ॥ १५ ॥
विशालवक्षा दीर्घाक्षो दीर्घबाहून्नतांसकः ।
विशालपादो गम्भीरः सूक्ष्माङ्गुल्यवनीधरः ॥ १६ ॥
मृणालपादो गम्भीरनाभिरुद्धतकन्धरः ।
अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याऽप्येष कुले शिशुः ॥ १७ ॥
जातो नीतः कृतान्तेन कालपाशाद् दुरात्मना ।

सूत उवाच—

एवं दृष्ट्वाऽथ तं बालं मातुरङ्के प्रसारितम् ॥ १८ ॥
स्मृतिमभ्यागतो राजा हा हेत्यश्रूण्यपातयत् ।
सोऽप्युवाच च वत्सो मे दशामेतामुपागतः ॥ १९ ॥
नीतो यदि च घोरेण कृतान्तेनाऽऽत्मनो वशम् ।
विचारयित्वा राजाऽसौ हरिश्चन्द्रस्तथा स्थितः ॥ २० ॥
ततो राज्ञी महादुःखावेशादिदमभाषत ।

राज्ञ्युवाच—

हा वत्स कस्य पापस्य त्वपध्यानादिदं महत् ॥ २१ ॥
दुःखमापतितं घोरं तद्रूपं नोपलभ्यते ।
हा नाथ राजन् भवता मामपास्य सुदुःखिताम् ॥ २२ ॥

कस्मिन् संस्थीयते स्थाने विश्रब्धं केन हेतुना।
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ २३ ॥
हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधातः कृतं त्वया।
इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्थानच्युतस्तदा ॥ २४ ॥
प्रत्यभिज्ञाय देवीं तां पुत्रं च निधनं गतम्।
कष्टं ममैव पत्नीयं बालकश्चाऽपि मे सुतः ॥ २५ ॥
ज्ञात्वा पपात संतप्तो मूर्च्छामति जगाम ह।
सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् ॥ २६ ॥
मूर्च्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले।
चेतनां प्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम् ॥ २७ ॥
विलपतुः सुसंतप्तौ शोकभारेण पीडितौ।

राजोवाच—

हा वत्स सुकुमारं ते वदनं कुञ्चितालकम् ॥ २८ ॥
पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते।
तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् ॥ २९ ॥
उपगुह्य कदा वक्ष्ये वत्स वत्सेति सौहृदात्।
कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना ॥ ३० ॥
ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति।
न वाऽलं मम संभूतं मनो हृदयनन्दन ॥ ३१ ॥
"मयाऽसि पितृमान्पित्रा विक्रीतो येन वस्तुवत्।"
गतं राज्यमशेषं मे सबांधवधनं महत् ॥ ३२ ॥
हीनदैवान्नृशंसेन हृतो मे तनयस्ततः।"
अहं महाहिदष्टस्य पुत्रस्याऽऽननपंकजम् ॥ ३३ ॥
निरीक्षन्नद्य घोरेण विषेणाऽधिकृतोऽधुना।
एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः ॥ ३४ ॥
परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह।

ततस्तं पतितं दृष्ट्वा शैव्या चैवमचिन्तयत् ॥ ३५ ॥
अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते ।
विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः ॥ ३६ ॥
तथाऽस्य नासिका तुंगा तिलपुष्पोपमा शुभा ।
दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः ॥ ३७ ॥
श्मशानमागतः कस्माद्यद्येवं स नरेश्वरः ।
विहाय पुत्रशोकं सा पश्यन्ती पतितं पतिम् ॥ ३८ ॥
प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्रार्तिपीडिता ।
वीक्षन्ती सा तदाऽपतन्मूर्च्छया धरणीतले ॥ ३९ ॥
प्राप्य चेतश्च शनकैः सा गद्गदमभाषत ।
धिक् त्वां दैव ह्यकरुण निर्मर्याद जुगुप्सित ॥ ४० ॥
येनाऽयममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ।
राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् ॥ ४१ ॥
प्रापयित्वाऽपि येनाऽद्य चांडालोऽयं कृतो नृपः ।
नाद्य पश्यामि ते छत्रं सिंहासनमथाऽपि वा ॥ ४२ ॥
चामर व्यजने वाऽपि कोऽयं विधिविपर्ययः ।
यस्याऽस्य व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गतः ॥ ४३ ॥
स्वोत्तरीयैः प्रकुर्वन्ति विरजस्कं महीतलम् ।
सोऽयं कपालसंलग्ने घटीपटनिरन्तरे ॥ ४४ ॥
मृतनिर्माल्यसूत्रांतर्लग्नकेशसुदारुणे ।
वसानिष्पंदसंशुष्कमहापटलमंडिते ॥ ४५ ॥
भस्माङ्गाराधदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ।
गृध्रगोमायुनादार्ते पुष्टक्षुद्रविहङ्गमे ॥ ४६ ॥
चिताधूमायतपटनीलीकृतदिगन्तरे ।
कुणपास्वादनमुदासंप्रकृष्टनिशाचरे ॥ ४७ ॥
चरत्यमेध्ये राजेन्द्रः श्मशाने दुःखपीडितः ।

एवमुक्त्वाऽथ संश्लिष्य कण्ठे राज्ञो नृपात्मजा ॥ ४८ ॥
कष्टं शोकसमाविष्टा विललापार्तया गिरा ।
राजन् स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् ॥ ४९ ॥
तत्कथ्यतां महाभाग मनो वैमुह्यते मम ।
यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता ॥ ५० ॥
तथैव विप्रदेवादिपूजने सत्यपालने ।
नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नाऽऽर्जवं नाऽनृतांशता ॥ ५१ ॥
यत्र त्वं धर्म-परमः स्वराज्यादवरोपितः ।

सूत उवाच—

इति तस्या वचःश्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदः ॥ ५२ ॥
कथयामास तन्वंग्यै यथा प्राप्तः श्वपाकताम् ।
रुदित्वा सा तु सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता ॥ ५३ ॥
स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तं न्यवेदयत् ।
श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५४ ॥
मृतपुत्रं समानीय जिह्वया विलिहन्मुहुः ।
हरिश्चन्द्रमथ प्राह शैव्या गद्गदया गिरा ॥ ५५ ॥
कुरुष्व स्वामिनः प्रेष्यं छेदयित्वा शिरो मम ।
स्वामिद्रोहो न तेऽस्त्वद्य माऽसत्योभव भूपते ॥ ५६ ॥
माऽसत्यं तव राजेन्द्र परद्रोहस्तु पातकम् ।
एतदाकर्ण्य राजा तु पपात भुवि मूर्छितः ॥ ५७ ॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य विललापाति दुःखितः ।

राजोवाच—

कथं प्रिये त्वया प्रोक्तं वचनं त्वतिनिष्ठुरम् ॥ ५८ ॥
यदशक्यं भवेद्वक्तुं तत्कर्म क्रियते कथम् ।

पत्न्युवाच—

मया च पूजिता गौरी देवाविप्रास्तथैव च ॥ ५९ ॥

भविष्यसि पतिस्त्वं मे ह्यन्यस्मिञ्जन्मनि प्रभो ।
श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ६० ॥
मृतस्य पुत्रस्य तदा चुचुम्ब दुःखितो मुखम् ।

राजोवाच—

प्रिये न रोचते दीर्घं कालं क्लेशं मयाऽशितुम् ॥ ६१ ॥
नात्मायत्तोऽहं तन्वङ्गि पश्य मे मंदभाग्यताम् ।
चांडालेनाऽननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ॥ ६२ ॥
चांडालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ।
नरकं च वरं प्राप्य खेदं प्राप्स्यामि दारुणम् ॥ ६३ ॥
तापं प्राप्स्यामि संप्राप्य महारौरवरौरवे ।
मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणैर्वियोजनम् ॥ ६४ ॥
एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ।
मम दैवानुयोगेन मृतः सोऽपि बलीयसा ॥ ६५ ॥
कथं प्राणान्विमुञ्चामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः ।
तथापि दुःख बाहुल्यात्त्यक्ष्यामि तु निजां तनुम् ॥ ६६ ॥
त्रैलोक्येनाऽस्ति तद्दुःखं नाऽसिपत्रवने तथा ।
वैतरिण्यां कुतस्तद्वद्यादृशं पुत्रविप्लवं ॥ ६७ ॥
सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ।
निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं तन्ममाऽधुना ॥ ६८ ॥
न वक्तव्यं त्वया किंचिदतः कमललोचने ।
ममवाक्यं च तन्वाङ्गि निबोधाऽऽहतमानसा ॥ ६९ ॥
अनुज्ञाताऽथ गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते ।
यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥ ७० ॥
संगमः परलोके मे निजपुत्रेण चेत्त्वया ।
इह लोके कुतस्त्वेतद् भविष्यति समीप्सितम् ॥ ७१ ॥
यन्मया हसता किञ्चिद् रहसि त्वां शुचिस्मिते ।

अशेषमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम यास्यतः ॥ ७२ ॥
राजपत्नीति गर्वेण नाऽवज्ञेयः स मे द्विजः ।
सर्वयत्नेन तोष्यः स्यात्स्वामी दैवतवच्छुभे ॥ ७३ ॥

राज्ञ्युवाच—

अहमप्यत्र राजर्षे निपतिष्ये हुताशने ।
दुःखभारासहा देव सह यास्यामि वै त्वया ॥ ७४ ॥
त्वया सह मम श्रेयो गमनं नाऽन्यथा भवेत् ।
सह स्वर्गं च नरकं त्वया भोक्ष्यामि मानद ।
श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥ ७५ ॥

उपसंहारः ।

सूत उवाच—

ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् ।
भार्यया सहितो राजा बद्धाञ्जलिपुटस्तदा ॥ १ ॥
चिन्तयन्परमेशानीं शताक्षीं जगदीश्वरीम् ।
पञ्चकोशांतरगतां पुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ २ ॥
रक्ताम्बरपरीधानां करुणारससागराम् ।
नानायुधधरामम्बां जगत्पालनतत्पराम् ॥ ३ ॥
तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः ।
धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४ ॥
आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते राजञ्छृणु महाप्रभो ।
अहं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान् स्वयम् ॥ ५ ॥
साध्याः सविश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः ।
नागाः सिद्धाः सगन्धर्वा रुद्राश्चैव तथाऽश्विनौ ॥ ६ ॥
एते चाऽन्येऽथ बहवो विश्वामित्रस्तथैव च ।
विश्वत्रयेण यो मैत्रीं कर्त्तुमिच्छति धर्मतः ॥ ७ ॥

विश्वामित्रः स तेऽभीष्टमाहर्तुं सम्यगिच्छति ।

धर्म उवाच—

मा राजन् साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः ॥ ८ ॥

तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्वद्गुणैः परितोषितः ।

इन्द्र उवाच—

हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ॥ ९ ॥

त्वयाऽद्य भार्या पुत्रेण जिता लोकास्सनातनाः ।

आरोह त्रिदिवं राजन् भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ १० ॥

सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीय कर्मभिः ।

सूत उवाच—

ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥ ११ ॥

इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितामध्ये गते शिशौ ।

पुष्पवृष्टिश्च महतीं दुंदुभिस्वन एव च ॥ १२ ॥

समुत्तस्थौ मृतः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः ।

सुकुमारतनुः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतमानसः ॥ १३ ॥

ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं तदा ।

सभार्यः स्वश्रियायुक्तो दिव्यमाल्याम्बरावृतः ॥ १४ ॥

स्वस्थः संपूर्णहृदयो मुदा परमया वृतः ।

बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूपं चैवमभाषत ॥ १५ ॥

सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च स्वर्लोकं सद्गतिं पराम् ।

समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलम् ॥ १६ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

देवराजाननुज्ञातः स्वामिनाश्वपचेन हि ।

अकृत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्ये वै सुरालयम् ॥ १७ ॥

धर्म उवाच—

तवैवं भाविनं क्लेशमवगम्याऽऽत्ममायया ।

आत्मश्वपाचतां नीतो दर्शितं तच्चपकणम् ॥ १८ ॥

इन्द्र उवाच—

प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि ।
तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥ १९ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चेदं निबोध मे ।
मच्छोकमग्नमनसः कोसले नगरे नराः ॥ २० ॥
तिष्ठन्ति तानपास्यैवं कथं यास्याम्हं दिवम् ।
ब्रह्महत्या सुरापानं गोवधः स्त्रीवधस्तथा ॥ २१ ॥
तुल्यमेभिर्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम् ।
भजन्तं भक्तमत्याज्यं त्यजतः स्यात्कथं सुखम् ॥ २२ ॥
तैर्विना न प्रयास्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज ।
यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर ॥ २३ ॥
ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वाऽपि तैः सह ।

इन्द्र उवाच—

बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै नृप ॥ २४ ॥
कथं संघातभोज्यं त्वं भूप स्वर्गमभीप्ससि ।

हरिश्चन्द्र उवाच—

भुंक्ते शक्र नृपो राज्यं प्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २५ ॥
यजते च महायज्ञैः कर्मपूर्तं करोति च ।
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ २६ ॥
उपदाधन्न संत्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ।
तस्माद्यन्मम देवेश किंचिदस्ति सुचेष्टितम् ॥ २७ ॥
दत्तमिष्टं हुतं जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ।
बहुकालोपभोज्यं च फलं यन्मम कर्मगम् ॥ २८ ॥
तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ।

सूत उवाच—

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ २६ ॥
प्रसन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः ।
गत्वा तु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाकुलम् ॥ ३० ॥
हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः ।
आगच्छन्तु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् ॥ ३१ ॥
धर्मप्रसादात्संप्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु ।
हरिश्चन्द्रोऽपि तान् सर्वाञ्जनान्नगरवासिनः ॥ ३२ ॥
प्राह राजा धर्मपरो दिवमारूह्यतामिति ।

सूत उवाच—

तदिन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीतास्तस्य च भूपतेः ॥ ३३ ॥
ये संसारेषु निर्विण्णास्ते धुरं स्वसुतेषु वै ।
कृत्वा प्रहृष्टमनसो दिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ३४ ॥
विमानवरमारूढाः सर्वे भास्वरविग्रहाः ।
तदा संभूतहर्षास्ते हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ॥ ३५ ॥
राज्येऽभिषिच्य तनयं रोहिताख्यं महामनाः ।
अयोध्याऽऽख्ये पुरे रम्ये हृष्टपुष्टजनान्विते ॥ ३६ ॥
तनयं सुहृदश्चापि प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ।
पुण्येन लभ्यां विपुलां देवादीनां सुदुर्लभाम् ॥ ३७ ॥
संप्राप्य कीर्तिमतुलां विमाने स महीपतिः ।
आसांचक्रे कामगमे स्वर्लोकं प्रति प्रेरिते ॥ ३८ ॥

शकुन्तलोपाख्यानम् ।

शकुन्तलादर्शनम् ।

शेष उवाच—

दुष्यन्तो नाम राजर्षिश्चन्द्रवंशविभूषणः ।
पौरवः सुमहातेजा वेदवेदाङ्गपारगः ॥१॥
धनुर्विद्यासुनिपुणः सर्वराजगुणान्वितः ।
कन्दर्प इव सौन्दर्ये धैर्ये च तुहिनाचलः ॥२॥
समुद्र इव गम्भीरः कुवेर इव ऋद्धिमान् ।
प्रतापे वासवसमस्तेजस्वी भानुमानिव ॥३॥
सत्सु स्निग्धो यथा चन्द्रो धर्मतन्त्रे यथा मनुः ।
स प्रजाः पालयामास नृपः पुत्रानिवौरसान् ॥४॥
कदाचिन्मृगयां राजा स जगाम बलैर्वृतः ।
रम्यं स्यन्दनमारुह्य नानामणिगणाचितम् ॥५॥
अथारण्ये ददर्शासौ मृगमत्यन्तमूर्जितम् ।
तमन्वधावद्राजर्षिर्मृगमात्तशरासनः ॥६॥
मृगोऽपि बलवांस्तस्मिन्नुत्प्लवेन महीयसा ।
धावत्येव ततो राजा बद्धामर्षोऽनुधावति ॥७॥
ततः कण्वाश्रमाभ्यासे मृगं प्रति महाबलः ।
संदधे शरमत्युग्रं शब्दभेदिनमाशु वै ॥८॥
तं तथा संहितशरं कण्वशिष्याः सुदूरतः ।
अब्रुवन्नाश्रममृगो न हन्तव्यो महीपते ॥९॥
तदाश्रममृगेत्येवं कर्णार्द्धमागते स्वरे ।
संजहार महाबाणं पौरवः पौरुषान्वितः ॥१०॥
प्रत्याख्यातसमुद्योगस्तृषार्त्तः स महीपतिः ।
तोयमन्वेषयन् कन्या ददर्शाप्सरसां समाः ॥११॥

स्वानुरूपघटैः कक्षाविन्यस्तैः सरसः पयः ।
आहृत्य सिञ्चतीर्बाला वन्यानाश्रमपादपान् ॥१२॥
तासां मध्येऽतिरम्याङ्गी कन्या नाम्ना शकुन्तला ।
राजानं प्रेक्ष्य सुस्निग्धमुवाच वचनं द्विज ! ॥१३॥
त्वमद्यातिथिरायातः सत्कृतो यास्यसि ध्रुवम् ।
इदमासनमेतत्ते पाद्यमर्घ्यं च गृह्यताम् ॥१४॥
तद्वागमृतसन्तुष्टो गृहीत्वातिथिसत्क्रियाम् ।
मदनाशुगसंपातकिञ्चित्स्पृष्टमनोरथः ॥१५॥
उवाच राजा दुष्यन्तः कासि कस्यासि भामिनि ।
पश्यामि त्वां वरारोहे देवीमिव दिवश्च्युताम् ॥१६॥
राजन्योऽहं पुरुकुले दुष्यन्तो नाम भूपतिः ।
तच्छ्रुत्वा सा सखीं प्राह कथयस्व ममोद्भवम् ॥१७॥

सख्युवाच—

राजन्यो गाधितनयो विश्वामित्रो महामनाः ।
वसिष्ठेन जितो युद्धे ब्रह्मण्येन बलीयसा ॥१८॥
गर्हयन् क्षत्रियबलं ब्रह्मण्यं बहु मानयन् ।
ब्रह्मण्यार्थी तपस्तेपे बहुवर्षसहस्रकम् ॥१९॥
तद् दृष्ट्वा भयमापन्नः शक्रः संमन्त्र्य दैवतैः ।
मेनकां प्रेषयामास तपो विघ्नाय पार्थिव ॥२०॥
सागत्य पुरतस्तस्य स्वर्गाभरणभूषिता ।
प्रलोभयामास मुनिं विश्वामित्रं स्वविभ्रमैः ॥२१॥
जितेन्द्रियोऽपि कामेन तदपाङ्गधनुश्च्युतैः ।
कटाक्षबाणै राजेन्द्र विव्यथे गाधिनन्दनः ॥ २२ ॥
धैर्यच्युतोऽथ बाहुभ्यामाश्लिषन्मेनकां मुहुः ।
रेमे च मदनाविष्टः क्षणात्संज्ञामवाप सः ।
व्रीडितस्तां विसृज्याथ वनेऽस्मिन् प्रययौ द्रुतम् ॥२३॥

मेनकापि च तं गर्भं विमुच्य गहने वने ।
शक्रलोकं समापेदे न प्रैक्षत पुनर्नृप ॥२४॥
शकुन्तैरथ गर्भोऽसौ रक्षितः पृथिवीपते ।
अतः शकुन्तला नाम नृपेयं वरवर्णिनी ॥२५॥
कण्वस्तु सुमहातेजाः कन्यां वीक्ष्य वने स्थिताम् ।
अनुकम्प्य स्वसुतात्वे कल्पयामास सुन्दरीम् ॥२६॥
मुनिना संभृता कन्या तं तातं मन्यते सदा ।
सुतां कण्वस्य विद्धीमां मुनिवर्यस्य भूपते ॥२७॥

दुष्यन्त उवाच—

सुव्यक्तं राजपुत्रीयं यथा कल्याणि भाषसे ।
अन्यथा पौरवाणां हि मनो नैवानुरज्यति ॥२८॥
भार्या भवतु सुश्रोणी ममेयं मृगलोचना ।
सुवर्णमालां वासांसि कुण्डले परिहाटके ॥२९॥
नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्ने च शोभने ।
आहरामि महाभागे निष्कादीन्यतुलानि च ॥ ३० ॥
सर्वं राज्यं प्रदास्यामि भार्या भवतु ते सखी ।
गान्धर्व्वेण च मां भीरु विवाहेन वृणोतु च ।
विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३१ ॥

शकुन्तलोवाच—

फलाहारगतो राजन् पिता मे इत आश्रमात् ।
मुहूर्तं तु प्रतीक्षस्व स मां तुभ्यं प्रदास्यति ॥ ३२ ॥

राजोवाच—

इच्छामि त्वां वरारोहे भजमानामनिन्दिते ।
त्वदर्थं मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम ॥ ३३ ॥
आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः ।
आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि सुव्रते ॥ ३४ ॥

अष्टावेव महाभागे विवाहा वेदसम्मताः ।
ब्राह्मो दैवस्तथार्षश्च प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ ३५ ॥
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमः स्मृतः ।
मनुः स्वायम्भुवो धर्मान् पूर्वपूर्वान् पुराब्रवीत् ॥ ३६ ॥
प्रशस्तांश्चतुरः पूर्वान् ब्राह्मणस्योपधारय ।
षडानुपूर्व्या क्षत्राणां विद्धि धर्म्याननिन्दिते ॥ ३७ ॥
राज्ञान्तु राक्षसोऽप्युक्तो विट्शूद्रस्यासुरः स्मृतः ।
पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह ॥ ३८ ॥
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन ।
गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रे धर्म्यौ तौ मा विशङ्किथाः ।
मिश्रौ वापि पृथग्वापि कर्तव्यौ द्वौ महीभुजाम् ॥ ३९ ॥
सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरवर्णिनी ।
गान्धर्वेणैव धर्मेण भार्या भवितुमर्हसि ॥ ४० ॥

शकुन्तलोवाच—

यदि धर्म पथस्त्वेष यदि चात्मा प्रभुर्मम ।
प्रदाने पौरवश्रेष्ठ शृणु मे समयं प्रभो ।
प्रतिजानीहि सत्यं मे यथा वक्ष्यामि तेऽनघ ॥ ४१ ॥
मम जायेत यः पुत्रः स भवेत्त्वदनन्तरम् ।
युवराजो महाराज सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ४२ ॥
अभिज्ञानञ्च राजेन्द्र देहि स्वमङ्गुरीयकम् ।
यद्येतदेवं राजेन्द्र अस्तु मे सङ्गमस्त्वया ॥ ४३ ॥

शेष उवाच—

एवमस्त्विति तां राजा प्रत्युवाचाविचारयन् ।
अपि च त्वां हि नेष्यामि नगरं स्वं शुचिस्मिते ॥ ४४ ॥
तथा त्वमर्हा सुश्रोणि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।
एवमुक्त्वा स राजर्षिस्तामनिन्दितविग्रहाम् ॥ ४५ ॥

जग्राह विधिवत्पाणावुवास च तया सह ।
विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच्च पुनः पुनः ॥ ४६ ॥
प्रेषयिष्ये च नेतुं त्वां वाहिनीं मन्त्रिभिः सह ।
विभूत्या परयोपेतां नाययिष्यामि सुव्रते ॥ ४७ ॥
इति तस्याः प्रतिज्ञाय स नृपो मुनिसत्तम ।
मनसा चिन्तयन् प्रायाद् दत्त्वा चाप्यङ्गुरीयकम् ॥ ४८ ॥
काश्यपस्तपसा युक्तः श्रुत्वा किं नु करिष्यति ।
एवं विचिन्तयन्नेव प्राविशन्नगरं नृपः ॥ ४९ ॥

शापः ।

एतस्मिन्नन्तरे विप्र कण्वोऽप्याश्रममाश्रयत् ।
शकुन्तला तु पितरं ह्रिया नोपजगाम तम् ॥ १ ॥
विज्ञायाथ च तां कण्वो दिव्यज्ञानेन मारिष ।
उवाच भगवान् प्रीतो व्रीडमानां शकुन्तलाम् ॥ २ ॥
त्वयाद्य भद्रे रहसि मामनाभाष्य यः कृतः ।
पुंसा सह समायोगो न स धर्म्मोपघातकः ॥ ३ ॥
क्षत्रियस्य हि गान्धर्व्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते ।
सकामायां सकामस्य निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः ॥ ४ ॥
महात्मासौ महाराजः पुरुवंशप्रदीपनः ।
यं पतिं प्रतिपन्ना त्वं भजमानं शकुन्तले ॥ ५ ॥
ममापि चिन्ता ह्यासीत्त्वत्प्रदानाय सुन्दरि ।
ययाहं नियतं दग्धो दावेनेव महाद्रुमः ॥ ६ ॥
वरं त्वत्सदृशं लोके नान्यमालोकयामि ते ।
तेनायं निश्चितो राजा मयापि सदृशो वरः ॥ ७ ॥
स यदि स्वयमागत्य त्वामगृह्णात्करे नृपः ।

अभ्यर्थनार्थलघुता न ममाभूद्गरीयसी ॥८॥
महात्मा भविता पुत्रस्तव सुभ्रु महाबलः ।
य इमां भोक्ष्यते कृत्स्नां भूमिं सागरमेखलाम् ॥९॥
स्वनाम्ना ख्यातिमप्यत्र वंशे संजनयिष्यति ।
परं चाभिगतस्यास्य चक्रं नाम महात्मनः ।
भविष्यत्यप्रतिहतं नियतं चक्रवर्त्तिनः ॥ १० ॥

शेष उवाच—

ततः प्रक्षाल्य पादौ सा सन्निधाय फलानि च ।
उपविष्टं गतश्रान्तिमब्रवीत्तं शुचिस्मिता ॥ ११ ॥
यो मयासौ वृतो राजा पौरवः पुरुषोत्तमः ।
स त्वयानुमतो यस्मात्कृतार्थास्मि पितः प्रभो ।
प्रसादं कुरु तस्यापि सामात्यस्य महीपतेः ॥ १२ ॥

कण्व उवाच—

प्रसन्न एव तस्याहं पूर्वमेव शुचिस्मिते ।
ब्रह्मण्यः पौरवो राजा धर्मात्मा च विशेषतः ॥
कं ददामि वरं तस्मै ब्रूहि कल्याणि माचिरम् ॥ १३ ॥

शेष उवाच—

ततो धर्मिष्ठतां वव्रे राज्याच्चास्खलनं तथा ।
शकुन्तला पौरवाणां दुष्यन्तहितकाम्यया ॥ १४ ॥
परेऽहनि मुनौ याते विरहेण शकुन्तला ।
न लेभे मनसः शान्तिं चिन्तयन्ती महीपतिम् ॥ १५ ॥
क्षणं निश्वासबहुला सुष्वाप धरणीतले ।
लिलेख च नखेन क्ष्मां नाललाप सखीजनैः ॥ १६ ॥
क्षणं विलोकयामास दिगन्तान् लोललोचना ।
ध्यायन्ती जगतीनाथं क्षणं प्राप्तमनोरथा ॥ १७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र दुर्वासास्तपसा ज्वलन् ।

आजगामाश्रमपदं कण्वस्य द्विजसत्तम ॥ १८ ॥
दूरादुच्चैर्बभाषेऽथ केयं पर्णोटजे स्थिता ।
विलोकयतु मां प्राप्तमतिथिं भोजनार्थिनम् ॥ १९ ॥
इत्युच्चैर्मुहुराभाष्य न प्राप्यातिथि सत्क्रियाम् ।
तपोधनश्चुकोपाशु शशाप क्रोधनो मुनिः ॥ २० ॥
यं त्वं चिन्तयसे बाले मनसाऽनन्यवृत्तिना ।
विस्मरिष्यति स त्वां वै अतिथौ मौनशालिनीम् ॥ २१ ॥
इत्येवमुक्ते वचने क्रोधाद् दुर्वाससा तदा ।
सखी प्रियंवदा नाम शुश्राव क्रोधभाषितम् ॥ २२ ॥
त्वरयाथ समागम्य पाद्यादिकृतसञ्चया ।
प्रसादयामास मुनिं मूर्ध्ना तच्चरणं गता ॥ २३ ॥

प्रियंवदोवाच—

पौरवस्य इयं राज्ञी दुष्यन्तस्य महीभृतः ।
विश्वामित्रात्मजा बाला मेनकाप्सरसः सुता ॥ २४ ॥
कण्वस्य दुहिता चेयं पालनात्सुपतिव्रता ।
चिन्तयन्ती पतिं मुग्धा विरहेण सुविह्वला ॥ २५ ॥
न किञ्चिदभिजानाति न भवांस्तेन सत्कृतः ।
नावज्ञानान्न गर्वाच्च तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ २६ ॥
यथा न विस्मरेद्राजा शापान्तं कुरु तापस ।
ततः प्रसन्नो दुर्वासाः प्राह शापान्तकारणम् ॥ २७ ॥
विस्मृतिस्तस्य राजर्षेस्तावदेव भविष्यति ।
प्रियंवदे नृपो यावदभिज्ञानं न पश्यति ॥ २८ ॥
इति कृत्वा स शापान्तं गृहीत्वा सत्क्रियां ययौ ।
अथ तस्यास्तदा गर्भो राजर्षेस्तेजसा भृतः ॥ २९ ॥
शशीव विशदे पक्षे वर्द्धते स्म दिने दिने ।
कण्वोऽपि भगवान् दृष्ट्वा दोहदं समुपस्थितम् ॥ ३० ॥

मुदा परमया युक्तः पृष्ठाभिलाषितं हितम् ।
उवाच भगवान्कण्वो मुनिमण्डलमध्यगाम् ॥ ३१ ॥

दुष्यन्तपुर-प्रेषणम् ।

कण्व उवाच

कन्या पितृगृहे नैव सुचिरं वासमर्हति ।
लोकापवादः सुमहान् जायते पितृवेश्मनि ॥ १ ॥
नार्याः पतिर्गतिर्भर्त्ता तपश्च परमं पतिः ।
दैवतं गुरुरार्यश्च पतिः स्त्रीणां परं पदम् ॥ २ ॥
यं प्रसोष्यसि देवि त्वं भविता स महाबलः ।
राजपुत्रो वने स्थास्यत्ययं नाप्युचितो विधिः ॥ ३ ॥
अतस्त्वां प्रेषयिष्यामि निकटं तस्य भूभृतः
पत्युः प्रेमा हि नारीणां परं सौभाग्यमुच्यते ॥ ४ ॥

शकुन्तलोवाच

पितस्तेऽनुगृहीतास्मि पतिदर्शनवार्त्तया ।
नानुज्ञां प्रार्थये तुभ्यं स्नेहभङ्गभयात्तव ॥ ५ ॥
तदद्यैव गमिष्यामि राजर्षेस्तस्य चान्तिकम् ।
अनुज्ञां देहि मे तात कृपया तापसोत्तम ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा भगवान् कण्वः स्नेहप्रस्रवविप्लुतः ।
अनुज्ञाप्य मुनीनन्यान्मुनिपत्नीश्च सुव्रताः ॥ ७ ॥
उवाच परया प्रीत्या प्रेषयामि शकुन्तलाम् ।
भर्त्तुर्गृहाय कल्याण्याः कल्याणं कुरुत ध्रुवम् ॥ ८ ॥
ताश्च वाक्यं मुनेः श्रुत्वा प्रेमाश्रुक्लिन्नलोचनाः ।
आशीर्भिरनुकूलाभिः प्रायुञ्जन्त शकुन्तलाम् ॥ ९ ॥
विचित्रैरप्याभरणैः केशबन्धादिभिस्तथा ।
गात्रोद्वर्तनसंमार्ष्टिहरिद्रातैलसङ्गतैः ॥ १० ॥

भूषयामासुरव्यग्रां मुनिपत्न्यः शकुन्तलाम् ॥ ११ ॥
शुशुभे सा महाभागा विश्वामित्रसुता सती ।
नितरां गाधिपुत्रजा चन्द्रलेखेव विच्युता ॥ १२ ॥
अथ गुल्मलतावृक्षान् हरिणान् हरिणाङ्गनाः ।
उवाच कण्वः प्रेमार्द्रो मुञ्चन्नश्रुकला मुहुः ॥ १३ ॥
युष्माकं परमप्रेम्णा वासितेयं सुता मम ।
सर्वे कुरुत कल्याणं सुखं यातु शकुन्तला ॥ १४ ॥
इति सर्वाननुज्ञाप्य कण्वो मतिमतां वरः ।
आहूय गौतमीं वृद्धां सखीं चास्याः प्रियंवदाम् ॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा शिष्यौ चापि महाव्रतौ ॥ १५ ॥
यात यूयं महीभर्तुर्दुष्यन्तस्य पुरं प्रति ।
इमां शकुन्तलां राज्ञि समर्प्य पुनरेष्यथ ॥ १६ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा गौतमी च प्रियंवदा ।
मुनिः शार्ङ्गरवः शिष्यस्तथा शारद्वतो मुनिः ॥ १७ ॥
तथेति प्रतिगृह्याथ मुनेराज्ञां स्वमूर्धसु ।
शकुन्तलां पुरस्कृत्य पन्थानं प्रतिपेदिरे ॥ १८ ॥
अथ दक्षिणतस्तस्याः शिवा घोरं ववाशिरे ।
मृगाश्च चेलुः सव्येन वाता वान्तिस्म धूसराः ॥ १९ ॥
तदालोक्य समुद्विग्ना पथि यान्ती शकुन्तला ।
नितम्बिनी वरारोहा न शेके चलितुं द्रुतम् ॥ २० ॥
अथ मध्याह्नसमये प्राप्य प्राचीं सरस्वतीम् ।
मुनेः शिष्यौ च मध्याह्नक्रियां चक्रतुरेव तौ ॥ २१ ॥
प्रियंवदा गौतमी च सलिलं तज्जगाहतुः ।
शकुन्तलापि तत्रैव स्नानार्थमुपचक्रमे ॥ २२ ॥
प्रियंवदाकरे न्यस्य अभिज्ञानाङ्गुरीयकम् ।
स्नातुं सरस्वतीतोयमगाहत सुलोचना ॥ २३ ॥

प्रियंवदा नु तद्गुह्य वसनाञ्चलमध्यतः ।
यावन् न्यस्तवती तावत् पपात सलिले द्विज ॥ २४ ॥
प्रियंवदा भिया तस्यै वृत्तान्तं न न्यवेदयत् ।
शकुन्तलापि तत्सख्यै पप्रच्छापि न विस्मृता ॥ २५ ॥
ततः स्नात्वा च ते सर्वे समाप्य विधिवत्क्रियाम् ।
दुष्यन्तपुरमापेदुस्तास्त्रियस्तौ च तापसौ ॥ २६ ॥

दुष्यन्त-पुरम् ।

राजद्वारं समासाद्य कण्वशिष्यौ महामते ।
ऊचतुस्तौ प्रतीहारं तूर्णं राज्ञे निवेदय ॥ १ ॥
काश्यपस्य निदेशेन राजद्वारमिहागतौ ।
शिष्यौ तस्य साङ्गरव शारद्वतसमाह्वयौ ॥ २ ॥
सुता तस्य च कल्याणी द्वे अन्ये च द्विजस्त्रियौ ।
प्रतीहारस्ततो गत्वा राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ३ ॥
राजा पुरोधस प्राह गौतमं हृदि चिन्तयन् ।
कथमेतौ मुनेः शिष्यौ स्त्रीभिरेताभिरावृतौ ॥ ४ ॥
आगताविह संप्राप्तौ भवानेव हि पृच्छतु ।
किं कण्वस्याश्रमे कश्चिद्राक्षसः कुरुतेऽनयम् ॥ ५ ॥
न जानाति हि दुष्टात्मा दुष्यन्तं राक्षसान्तकम् ।
किं वने पशवस्त्यक्त्वा नियमं मुनिना कृतम् ॥ ६ ॥
बाधन्ते व्याघ्रसिंहाद्याः स्त्रियो बालान् जरायुतान् ।
मृगयापि मया तावन्न कृता पुरवासिना ॥ ७ ॥
किं वा वन्यफलान्यद्य प्रभवन्ति न कानने ।
तेनाहारविनाभावाद्दुःखितास्ते तपोधनाः ॥ ८ ॥
यदद्य पतितं घोरं मुनीनां दुःखकारणम् ।
विधुनोमि तदद्यैव याहि पृच्छ तपोधनौ ॥ ९ ॥

पाद्यादीनि पुरस्कृत्य विधायातिथिसत्क्रियाम् ।
वासयस्व मुनी विप्र स्वगृहे ताः स्त्रियस्तथा ॥ १० ॥
चेद्विशेषविवक्षापि तयोरस्ति विबुध्य तत् ।
विज्ञापयिष्यसि पुनस्तद्विचार्य करोम्यहम् ॥ ११ ॥

शेष उवाच—

इति तद्वाक्यमादाय पुरोधाः स तपोधनः ।
पाद्यादीनि पुरस्कृत्य द्वारमागतवान् द्विज ॥ १२ ॥
राज्ञोक्तं सर्वमाचष्ट ददर्श च शकुन्तलाम् ।
अन्तःसत्त्वां महाभागां शिरः प्रच्छाद्य वाससा ।
अधोमुखीं चन्द्रकलामिव दीप्तिमतीं पुरः ॥ १३ ॥
पप्रच्छ च मुनी केयं सुन्दरी जगदद्भुता ।
अन्तःसत्त्वेव कल्याणी लज्जयाधोमुखी स्थिता ॥ १४ ॥

शिष्यावूचतुः—

विश्वामित्रसुता चेयं मेनकागर्भसंभवा ।
कण्वेन पालिता राज्ञी दुष्यन्तस्य महीपतेः ॥ १५ ॥
सेयं संप्रेषिता ब्रह्मन् कण्वेन नृपमन्दिरम् ।
अस्यैव भूपतेस्तेजो बिभ्रती मृगलोचना ॥ १६ ॥
राज्ञे निवेदयत्वस्मै तद् भवांस्त्वरया द्विज ।
नेयं राज्ञी द्वारदेशे स्थातुमर्हा महीपतेः ॥ १७ ॥

शेष उवाच—

पुरोधास्तदुपकर्ण्य संभ्रमेण महीपतिम् ।
गत्वा निवेदयामास वृत्तान्तं मुनिभाषितम् ॥ १८ ॥
दुष्यन्तस्तदुपश्रुत्य विस्मृतिं परमां गतः ।
उवाच ब्राह्मणं ब्रह्मन् वचसा कटुना नृपः ॥ १९ ॥
नैवं स्मरति मच्चेतः कुत्र का मे विवाहिता ।
गणिका कापि विप्रेन्द्रछलेन समुपागता ॥ २० ॥

गौतम उवाच—

न तथा दृश्यते राजन्नन्तःसत्त्वा वरानना ।
अनुजानीहि राजेन्द्र त्वदन्तिकमुपानये ॥ २१ ॥
विलोकय परं रूपं यदि ते स्मृतिरुद्भवेत् ।
प्रवेशनीया शुद्धान्ते नारी श्रीरिव रूपिणी
स्थातुर्महा न च द्वारि द्योतयन्ती दिशास्त्विषा ॥ २२ ॥
यदि नापि स्मृतिस्ते स्यात्तद्रूपं तु तथापि ते ।
विलोक्य भविता नान्यरूपदर्शनलालसा ॥ २३ ॥
इति राज्ञानुनीतेनाभ्यनुज्ञातो द्विजोत्तमः ।
आनाययामास मुनी ताः स्त्रियश्च सुलक्षणाः ॥ २४ ॥
आशीर्भिरनुयोज्याथ कण्वशिष्यौ महामती ।
ऊचतुः कण्वसन्देशं निपुणौ जगतीपतिम् ॥ २५ ॥

शिष्यावूचतुः—

त्वमाशिषा वर्द्धयित्वा प्राह त्वामावयोर्गुरुः ।
तच्छृणुष्व महाराजानन्तरं कर्तुमर्हसि ॥ २६ ॥
इयं शकुन्तला नाम विश्वामित्रसुतानघ ।
मेनकासंङ्गमाज्जाता पालिता दुहिता मम ॥ २७ ॥
मृगयाचारिणारण्ये गान्धर्वेण महीपते ।
विधिना यद्गृहीताभून्ममानुज्ञां विनापि हि ॥ २८ ॥
तत्साधुरिति तं मन्ये क्षत्रियाणामयं विधिः ।
तव सा बिभ्रती तेजो वस्तुं नार्होटजे मम ॥ २९ ॥
महिषी राजराजस्य साक्षात् श्रीरिवरूपिणी ।
सेयं प्रगृह्यतां राजन् कल्याणी महिषी तव ॥ ३० ॥
जनयिष्यति यं पुत्रमियं राज्ञी शकुन्तला ।
चक्रवर्ती राजराजो महात्मा स भविष्यति ॥ ३१ ॥
इत्याशिषा नियुज्य त्वां गुरुराह महातपाः ।

इयं प्रियंवदा नाम सखी चास्या मुनेः सुता ॥ ३२ ॥
इयं च ब्राह्मणी वृद्धा राजन् गौतमवंशजा ।
राजन् वयमिहायाता अनया गुरुवाक्यतः ॥ ३३ ॥

राजोवाच—

कति सन्तीह गणिका भ्रमन्ति कामसेवया ।
राजराजस्य महिषी का नो भवितुमिच्छति ॥ ३४ ॥
ब्राह्मणा विविधाः सन्ति तापसाश्छद्मरूपिणः ।
तासामनुग्रहेणैव समं ताभिर्भ्रमन्ति च ।
भुञ्जते विपुलान्भोगान्गणिकाभिरुपार्जितान् ॥ ३५ ॥
निशम्य नृपतेर्वाक्यं शिष्यौ कण्वस्य तापसौ ।
शेपतुर्विरहेणास्याः पश्चात्तापमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥
इत्युक्त्वा तौ गतौ वृद्धौ तापसौ ब्रह्मवादिनौ ।
गौतमस्तौ प्रसाद्याथावासयत् स्वे च वेश्मनि ॥ ३७ ॥
अथ सा गौतमी वृद्धा जगाद जगतीपतिम् ।
नैवमर्हसि भो राजन् विश्वामित्रसुतां प्रति ॥ ३८ ॥
एवं लावण्यमापन्ना क्व दृष्टा गणिका त्वया ।
अन्तःसत्त्वा महाभागा त्वया राजन् विवाहिता ॥ ३९ ॥
समाहितेन मनसा स्मर पश्य च सुन्दरीम् ।
इत्युक्त्वा मोचयामास शिरश्छादनमम्बरम् ॥ ४० ॥

राजोवाच—

पौरवाणां कुले जाताः सतां मार्गे कृतासनाः ।
न वयं रूपमात्रेण गणिकानां भ्रमामहे ॥ ४१ ॥
एवं वदति भूपाले व्रीडितेव तपस्विनी ।
निसंख्येन च दुःखेन तस्थौ स्थूणेव निश्चला ॥ ४२ ॥
संरम्भामर्षताम्राक्षी स्फुरमाणौष्ठसम्पुटा ।
कटाक्षैर्निर्दहन्तीव तिर्यग्राजानमैक्षत ॥ ४३ ॥

आकारं गूहमाना च मन्युनातिसमीरितम् ।
तपसा संभृतं तेजो धारयामास वै तदा ॥ ४४ ॥
सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा दुःखामर्षसमन्विता ।
भर्त्तारमभिसंप्रेक्ष्य क्रुद्धा राजानमब्रवीत् ॥ ४५ ॥
कथं न स्मरसे राजन् मृगयामधिगच्छता ।
गान्धर्वेण गृहीतो यत्पाणिर्मे विधिना नृप ॥ ४६ ॥
इति श्रुत्वा तु वचनं शापेनास्तमितस्मृतिः ।
अब्रवीन्न स्मरामि त्वां कस्य त्वं दुष्टतापसि ॥ ४७ ॥
धर्म्मकामार्थसम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह ।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद्वापीच्छसि तत्कुरु ॥ ४८ ॥

शकुन्तलोवाच—

कुतः प्रियंवदे साध्वि अभिज्ञानमिहानय ।
धूर्त्तमेनं सभामध्ये ह्रेपयामि नराधिपम् ॥ ४९ ॥
इत्युक्त्वा पाणिमाक्षिप्य भूयो भूयः प्रियंवदाम् ।
उवाच देहि देहीति ह्रेपयामि नराधिपम् ॥ ५० ॥
प्रियंवदा तु नीचैस्तां जगाद मृगलोचनाम् ।
कर्णान्तिके समासाद्य पतितं ते तदम्भसि ॥ ५१ ॥
तदुपश्रुत्य कल्याणी रम्भेव मरुता हता ।
पपात भूमौ निश्चेष्टा हा हतास्मीति वादिनी ॥ ५२ ॥
अथ तां गौतमी वृद्धा बाहुभ्यां मृगलोचनाम् ।
आश्लिष्य सान्त्वयामास लेभे संज्ञां ततः पुनः ॥ ५३ ॥
अथ क्रुद्धा महाभागा सख्यै राज्ञे च भामिनी ।
उवाचाश्रूणि संमार्ज्य स्मरन्ती पितरं मुनिम् ॥ ५४ ॥
जानन्नपि महाराज कस्मादेवं प्रभाषसे ।
न जानामीति निश्शङ्कं यथान्यः प्राकृतो जनः ॥ ५५ ॥
अत्र ते हृदयं वेद सत्यस्यैवानृतस्य वा ।

कल्याणं वद साध्वेण मात्मानमवमन्यथाः ॥ ५६ ॥
योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥ ५७ ॥
एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं
न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम् ।
यो वेदिता कर्मणः पापकस्य
यस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि ॥ ५८ ॥
मन्यते पातकं कृत्वा न कश्चिद्वेत्ति मामिति ।
विदन्ति चैनं देवाश्च स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ५९ ॥
आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये
धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ ६० ॥
यमो वैवस्वतस्तस्य निर्यातयति दुष्कृतम् ।
हृदि स्थितः कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञो यस्य तुष्यति ॥ ६१ ॥
न तु तुष्यति यस्यैव पुरुषस्य दुरात्मनः ।
तं यमः पापकर्म्माणं निर्यातयति दुष्कृतम् ॥ ६२ ॥
योऽवमन्यात्मनात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
न तस्य देवाः श्रेयांसो यस्यात्मापि न कारणम् ॥ ६३ ॥
स्वयं प्राप्तेति मामेवं मावमंस्थाः पतिव्रताम् ।
अर्चार्हां नार्चयसि मां स्वयं भार्यामुपस्थिताम् ॥ ६४ ॥
किमर्थं मां प्राकृतवदुपप्रेक्षसि संसदि ।
न खल्वरण्ये रुदितमस्तु मे शृणु भाषितम् ॥ ६५ ॥
यदि मे याचमानाया वचनं न करिष्यसि ।
कण्वशापेन ते मूर्धा शतधैव फलिष्यति ॥ ६६ ॥
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।

तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ ६७ ॥

मुनिनाभिहता चाहं तव पुत्रो भविष्यति ।
राजराजश्चक्रवर्ती न तन्मिथ्या भविष्यति ॥ ६८ ॥

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥ ६९ ॥

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा ।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलञ्च सन्ततेः ॥ ७० ॥

भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः ।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः ॥ ७१ ॥

सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः ।
पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः ॥ ७२ ॥

कान्तारेष्वपि विश्रामो जनस्याध्वनिकस्य वै ।
यः सदारः स विश्रान्तस्तस्माद्दाराः परा गतिः ॥ ७३ ॥

संसरन्तमभिप्रेतं विषमेष्वनपातिनम् ।
भार्यैवान्वेति भर्त्तारं सन्ततं या पतिव्रता ॥ ७४ ॥

प्रथमं संस्थिता भार्या पतिं प्रेत्य समीक्षते ।
पूर्वं मृतं च भर्त्तारं पश्चात् साध्व्यनुगच्छति ॥ ७५ ॥

एतस्मात्कारणाद्भूप पाणिग्रहणमिष्यते ।
यदाप्नोति पतिर्भार्यामिहलोके परत्र च ॥ ७६ ॥

दह्यमाना मनो दुःखैर्व्याधिभिश्चातुरा नराः ।
ह्लादन्ते स्वेषु दारेषु घर्मार्त्ताः सलिलेष्विव ॥ ७७ ॥

सुसंरब्धोऽपि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः ।
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य हि ॥ ७८ ॥

आत्मनो जन्मनः क्षेत्रं पुण्यं रामाः सनातनम् ।
ऋषीणामपि का शक्तिः स्रष्टुं रामामृते प्रजाः ॥ ७९ ॥

परिपत्य यथा सूनुर्धरणीरेणुलुण्ठितः ।

पितुराश्लिष्यतेऽङ्गानि किमस्त्यभ्यधिकं ततः ॥ ८० ॥
वरं प्रसूय पुत्रं ते विधाय च सुखं तव ।
गमिष्यामि महाराज कण्वस्य पितुराश्रमम् ॥ ८१ ॥
अण्डानि बिभ्रति स्वानि न भिन्दन्ति पिपीलिकाः ।
न भरेथाः कथं नु त्वं धर्मज्ञः सन् स्वमात्मजम् ॥ ८२ ॥
न वाससां न रामाणां नापां स्पर्शस्तथाविधः ।
शिशोरालिङ्ग्यमानस्य स्पर्शः सूनोर्यथा सुखः ॥ ८३ ॥
ब्राह्मणो द्विपदां श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठश्चतुष्पदाम् ।
गुरुर्गरीयसां श्रेष्ठः पुत्रः स्पर्शवतां वरः ॥ ८४ ॥
स्पृशतु त्वां समाश्लिष्य पुत्रो मे प्रियदर्शनः ।
पश्चादहं गमिष्यामि पितुरेवाश्रमं प्रति ॥ ८५ ॥
आहर्ता वाजिमेधस्य शतसंख्यस्य पौरव ।
भविता तनयस्तेऽयमित्याह मां गुरुर्मुनिः ॥ ८६ ॥
मृगावकृष्टेन हि ते मृगयां परिधावता ।
अहमासादिता राजन् कुमारी पितुराश्रमे ॥ ८७ ॥
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च सहजन्या च मेनका ।
विश्वाची च घृताची च षडेवाप्सरसां वराः ॥ ८८ ॥
तासां मां मेनका नाम ब्रह्मयोनिर्वराप्सराः ।
दिवः संप्राप्य जगतीं विश्वामित्रादजीजनत् ॥ ८९ ॥
स मां हिमवतः प्रस्थे सुषुवे मेनकाप्सराः ।
अवकीर्य च मां याता परात्मजमिवासती ॥ ९० ॥
किं नु कर्माशुभं पूर्वं कृतवत्यस्मि जन्मनि ।
यदहं बान्धवैस्त्यक्ता बाल्ये संप्रति च त्वया ॥ ९१ ॥

दुष्यन्त उवाच—

असत्यवचना नार्यः कस्ते श्रद्धास्यते वचः
मेनका निरनुक्रोशा बन्धकी जननी तव ।

ययासि हिमवत्प्रस्थे निर्माल्यमिव चोज्झिता ॥ ६२ ॥
स चापि निरनुक्रोशः क्षत्रयोनिः पिता तव ।
विश्वामित्रो ब्राह्मणत्वलुब्धः कामवशं गतः ॥ ६३ ॥
मेनकाप्सरसां श्रेष्ठा महर्षीणां पिता च ते ।
तयोरपत्यं कन्या त्वं पुंश्चलीव प्रभाषसे ॥ ६४ ॥
अश्रद्धेयमिदं वाक्यं कथयन्ती न लज्जसे ।
विशेषतो मत्सकाशे दुष्टतापसि गम्यताम् ॥ ६५ ॥
क्व महर्षिः स चैवोग्रः क्वाप्सराः सा च मेनका ।
क्व त्वमेवं कृपणा तापसीवेशधारिणी ॥ ६६ ॥
सर्व्वमेतत्परोक्षं मे यत्त्वं वदसि तापसि ।
नाहं त्वामभिजानामि यथेच्छं गम्यतां त्वया ॥ ६७ ॥

मेनकागमनम् ।

शकुन्तलोवाच—

राजन् सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यसि ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि ॥ १ ॥
मेनका त्रिदशेष्वेव त्रिदशाश्चानु मेनकाम् ।
ममैवोद्रिच्यते जन्म राजेन्द्र तव जन्मतः ॥ २ ॥
क्षितावटसि राजेन्द्र अन्तरिक्षे चराम्यहम् ।
आवयोरन्तरं पश्य मेरुसर्षपयोरिव ॥ ३ ॥
महेन्द्रस्य कुवेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
भवनान्यनुसंयामि प्रभावं पश्य मे नृप ॥ ४ ॥
सत्यश्च जनवादोऽयं तं प्रवक्ष्यामि ते नृप ।
निदर्शनं ब्रवीमीति न कोपं कर्त्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
विरूपो यावदादर्शे स्वमुखं नैव पश्यति ।
मन्यते तावदात्मानमन्येभ्यो रूपवत्तमम् ॥ ६ ॥

यदा तु मुखमादर्शे विकृतं पश्यतात्मनः ।
तदेतरं विजानाति स्वमेव नेतरं नरः ॥ ७ ॥
यस्तु स्याद्रूपसम्पन्नो न स निन्दति कञ्चन ।
अतीव जल्पन् दुर्वाचो भवतीह विकत्थनः ॥ ८ ॥
मूर्खो हि जल्पतां नृणां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः ।
अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव शूकरः ॥ ९ ॥
प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः ।
गुणवद्वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः ॥ १० ॥
अन्यान् परिवदन् साधुर्यथा हि परितप्यते ।
तथा परिवदन्नन्यान् हृष्टो भवति दुर्जनः ॥ ११ ॥
अभिवाद्य यथा वृद्धान् सन्तो गच्छन्ति निर्वृतिम् ।
एवं सज्जनमाक्रुश्य मूर्खो भवति निर्वृतः ॥ १२ ॥
सुखं जीवन्त्यदोषज्ञा मूर्खा दोषानुदर्शिनः ।
यत्र वाच्याः परैः सन्तः परानाहुस्तथाविधान् ॥ १३ ॥
अतो हास्यतरं लोके किञ्चिदन्यन्न विद्यते ।
यत्र दुर्जन इत्याह दुर्जनः सज्जनं स्वयम् ॥ १४ ॥
सत्यधर्मच्युतात्पुंसः क्रुद्धादाशीविषादिव ।
अनास्तिकोप्युद्विजते जनः किं पुनरास्तिकः ॥ १५ ॥
पुत्रस्ते भविताराजन्नपुत्रस्य महागुणः ।
चक्रवर्त्ती राजराज उत्तमः सर्वधन्विनाम् ॥ १६ ॥
स त्वं नृपतिशार्दूल न पुत्रं त्यक्तुमर्हसि ।
आत्मानं सत्यधर्मौ च पालयन् पृथिवीपते ॥ १७ ॥
वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात्क्रतुः ।
वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशताद्वरम् ॥ १८ ॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्रात्तु सत्यमेवातिरिच्यते ॥ १९ ॥

राजन् सत्यं परं ब्रह्म सत्यं च समयः परम् ।
मात्याक्षीः समयं राजन् सत्यं सङ्गतमस्तु ते ॥ २० ॥
अनृते चेत्प्रसङ्गस्ते श्रद्दधासि न चेत् स्वयम् ।
कण्वस्यैवाश्रमं गच्छे त्वादृशे नास्ति संगतम् ॥ २१ ॥
ऋतेऽपि त्वां महाराज शैलराजावतंसकाम् ।
चतुर्वर्णामिमामुर्वीं पुत्रो मे पालयिष्यति ।
मुनेः कण्वस्य वै वाक्यं भविता कथमन्यथा ॥ २२ ॥

राजोवाच—

किं नालपन्ति पुंश्चल्य एवमेव सुदुर्व्वचः ।
याहि त्वं गच्छ वाचाटे दूषयिष्यन्ति मां जनाः ॥ २३ ॥

पुरोहित उवाच—

अत्र वक्ष्यामि ते मन्त्रं शृणु राजन् महामते ।
यावत्प्रसवमत्रैव नारी तिष्ठतु ते गृहे ॥ २४ ॥
यदि ते सदृशं पुत्रं कामिन्येषा प्रसोष्यति ।
ततस्तवैव भार्य्येति वेत्स्यामस्तदनन्तरम् ।
शालिबीजाद्विजायेत न कदाचिद्यवाङ्कुरः ॥ २५ ॥

राजोवाच—

नैषा शुद्धान्तमध्येऽपि मम वासमिहार्हति ।
संसर्गादपि पुंश्चल्यो दूषयन्ति कुलस्त्रियः ॥ २६ ॥

पुरोहित उवाच—

अदृष्टतनयास्योसि राजराजोऽपि भूतले ।
अतस्ते सन्ततौ श्रद्धा राजन् मे जायतेऽधिका ॥ २७ ॥
इयं साध्वी वरारोहा कण्वेन परिपालिता ।
व्यभिचारमतो राजन्नाहं मन्ये मनागपि ॥ २८ ॥
यावत्प्रसवमेतान्तु वासयेऽहं निजालये ।
प्रसवे सति कल्याणीं स्वमेव गृहीष्यासि ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा गौतमो ब्रह्मन् सान्त्वयित्वा शकुन्तलाम् ।
स्वगृहायैव तां नेतुं विमनामुपचक्रमे ॥ ३० ॥
सा चापि मुक्तकण्ठं वै रुदती मृगलोचना ।
शनैः शनैर्गौतमं तमनुगन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र मेनकाप्सरसां वरा ।
तेजोरूपा व्योममध्यात्तडित्पातं पपात सा ॥ ३२ ॥
किमिदं किमिदं चित्रमिति जल्पत्सु सर्वतः ।
सभास्थेषु च सर्वेषु तेजसा धर्षितेषु च ॥ ३३ ॥
आलोकनेऽप्यशक्तेषु दुष्यन्ते भयविह्वले ।
शकुन्तलां समादाय अङ्कमारोप्य सत्वरम् ।
अम्बरं विजगाहे सा तत्केनापि न लक्षितम् ॥ ३४ ॥
एवं गते तु दुष्यन्तः खेदमाप ततो भृशम् ।
देवेन रचितां मायाममन्यत तदा नृपः ॥ ३५ ॥

दुष्यन्त-विलापः ।

शेष उवाच—

एकदा स महीपालो मन्त्रिभिर्ब्राह्मणैः सह ।
प्रजानां वेदितुं वृत्तं बभ्राम नगरे द्विज ॥ १ ॥
तत्र राजभटः कश्चिद् दृढमाबध्य धीवरम् ।
दण्डेन ताडयन्नुग्रैर्वचोभिः समतर्जयत् ॥ २ ॥
राजाभरणमेतद्वै यत्त्वया चोरितं छलात् ।
अतो बध्यत्वमापन्नं त्वां नयामि नृपान्तिके ॥ ३ ॥
इत्युक्त्वा तं करे गृह्य ताडयन् बहु मूर्धनि ।
राजान्तिकमुपानीय राजानमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥
एष धीवरको राजंश्चोरयित्वाङ्गुरीयकम् ।
त्वन्नामचिन्हितं लोके विदितं रत्ननिर्मितम् ।

विक्रेतुमुद्यतः पापो मया दृष्टो महीपते ॥ ५ ॥
राजा तं प्राह दाशेदं कुतो लब्धमिदं त्वया ।
कथयाभयमेतत्ते दत्तं जानीहि सांप्रतम् ॥ ६ ॥

धीवर उवाच—

जात्याहं धीवरो राजन् मत्स्यमात्रोपजीवकः ।
चौरिकां नैव जानामि न च सूनां न धूर्त्तताम् ।
जालेन मत्स्यान् बध्नामि सरस्वत्या हि रोधसि ॥ ७ ॥
एकदा जालमातत्य सरस्वत्यामहं नृप ।
स्थितः प्रत्याशया तत्रतीरस्थं तरुमाश्रितः ॥ ८ ॥
रोहितः कोऽपि बलवान् जाले बद्धो बभूव ह ।
ततोऽहं जालमुत्तार्य दृष्ट्वा रोहितमुद्धतम् ॥ ९ ॥
खड्गेन कृत्तवान् सद्यः परमानन्दनिर्वृतः ।
ततस्तदुदरे लब्धमेतद्रूपाङ्गुरीयकम् ॥ १० ॥
कस्येति न विजानामि तदहं नगरे तव ।
विक्रेतुमागतो बद्धो भटेनानेन भूमिप ॥ ११ ॥

राजोवाच—

देहि पश्यामि कस्यैतत् किं रूपमङ्गुरीयकम् ।
त्वमेतन्मूल्यमागृह्य सुखेनैव व्रजालयम् ॥ १२ ॥
इत्युक्त्वा पाणिनादाय यावद्राजा स पश्यति ।
निपतन्ति स्म नेत्राभ्यां तावदेवाश्रुबिन्दवः ॥ १३ ॥
प्रेयसीं तामनुस्मृत्य तथा गान्धर्वकर्म च ।
गर्भाधानञ्च सर्वं तत् मूर्च्छितो निपपात ह ॥ १४ ॥
तदा पुरोहितामात्या भृशमुद्विग्नचेतसः ।
उत्थाप्य तं महीपालं निवेश्य च वरासने ॥
लब्धसंज्ञं शनैर्ब्रह्मन् पप्रच्छुः किमिदं तव ॥ १५ ॥
दुष्यन्तोऽपि समाश्वस्य प्रेयसीं तामनुसरन् ।

निश्वस्य दीर्घमुष्णञ्च अश्रुमिश्रमभाषत ॥ १६ ॥
प्रत्याख्याता वरारोहा मन्दभाग्येन यन्मया ।
तदद्य मां दुनोत्येवमङ्गुरीयस्य दर्शनात् ॥ १७ ॥
तया यदुक्तं मां प्राप्य मम तेजो दधानया ।
नानृतं तत्र वै किञ्चिन्मयैवानृतकं कृतम् ॥ १८ ॥
मृगयाचारिणारण्ये सैव कण्वाश्रमे मया ।
गान्धर्व्वेणैव धर्मेण निर्बन्धेन विवाहिता ॥ १९ ॥
उषितञ्च तया सार्धं प्रतिज्ञातञ्च सर्वथा ।
बलेन चतुरङ्गेन नयिष्ये नगरं प्रति ॥ २० ॥
अभिज्ञानञ्च मे दत्तमेतद्रत्नाङ्गुरीयकम् ।
केनापि दैवयोगेन सर्वं तद्विस्मृतं मया ॥ २१ ॥
हन्त पापं कृतं भूरि मया निष्करुणात्मना ।
आसन्नप्रसवा भार्या त्यक्ता देवसुतोपमा ॥ २२ ॥
अनुकूलो न मे धाता नरकान्न च निष्कृतिः ।
प्रतिज्ञापूर्वकं पाणिगृहीता यद्विवर्जिता ॥ २३ ॥
श्री रूपिणी समागत्य स्वयमेव कृपान्विता ।
अर्पयन्ती महारत्नं यथा केनापि वर्ज्यते ॥ २४ ॥
तथा मया पुत्रफला परा साध्वी पतिव्रता ।
याचमाना सवैयर्थ्यं दूरादेव विवर्जिता ॥ २५ ॥
मेनकाप्सरसा जाता विश्वामित्रसुता सती ।
कण्वेन पालिता कन्या चारुशीला तपस्विनी ॥ २६ ॥
चिन्तामणिरिवायाता काममर्पयितुं स्वयम् ।
मया निराकृतबाला अन्तःसत्त्वा सुलोचना ॥ २७ ॥
कल्पवल्लीव कामानां संप्रदानेऽभ्युपस्थिता ।
उन्मूलिता मया तन्वी प्रसोष्यन्ती नरोत्तमम् ॥ २८ ॥
संरुम्भारुणनेत्रायाः स्मरच्चापायितभ्रुवः ।

वचांसि गूढगर्वाणि विदुन्वन्ति स्मृतानि माम् ॥ २९ ॥
एवं विलपमानं तं राजानं गौतमोऽब्रवीत् ।
तद्गतं नानुशोचस्व समाश्वस परन्तप ॥ ३० ॥
कथितश्च मया तत्र दृष्ट्वा तस्याः सुलक्षणम् ।
तद्रूपशालिनी बाला राज्ञी भवितुमर्हति ॥ ३१ ॥
सा हि मेनकया जाता चारुरूपा तपस्विनी ।
देवीव नावमानार्हा त्वया राजन् विवाहिता ॥ ३२ ॥
यद्भूतं महदाश्चर्यं प्रत्याख्यातवति त्वयि ।
तद् दृष्ट्वा के न शोचन्ति वदन्तस्त्वां हतश्रियम् ॥ ३३ ॥
भद्रं वाप्यथवाभद्रं प्रियमप्रियमेव वा ।
यद्गतं तद्गतं राजन् नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ३४ ॥

शेष उवाच—

विमृषत्स्वेव तेष्वेव देशान्तरचरश्चरः ।
राज्ञे निवेदयामास यद् दृष्टं सागराम्भसि ॥ ३५ ॥

चर उवाच—

राजन् सांयात्रिको नाम्ना धनवृद्धिर्महाबलः ।
विपन्नः सागरे सप्त वाहयन् सम्भृतास्तरीः ॥ ३६ ॥
स चानपत्यस्तस्येष्टा नावो रत्नेन पूरिताः ।
तवैव कोषमर्हन्ति गृह्यतामचिरेण ताः ॥ ३७ ॥

राजोवाच—

यान्तु मे मन्त्रिणः सम्यग्जानन्तु तत्परिग्रहान् ।
यदि काचिद्भवेद्भार्या गर्भिणी वणिजः क्वचित् ।
सैव तद्धनमादद्यान्नाधिकारी तदा नृपः ॥ ३८ ॥
तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो गत्वा विज्ञाय च विशेषतः ।
राज्ञे निवेदयामासुर्वृत्तान्तं ब्राह्मणर्षभ ॥ ३९ ॥
अत्रैव नगरे राजन् भार्या तस्य विलासिनी ।

अन्तःसत्त्वा वणिक्पुत्री वर्त्तते च पतिव्रता ॥ ४० ॥
राजा प्राह तरीस्थानि यानि यानि धनानि च ।
तानि तस्यै ददत्वद्य भटा मे यान्तु सत्वराः ॥ ४१ ॥
इति प्रस्थाप्य राजेन्द्रो भटांस्तद्धनरक्षणे ।
द्विगुणेनैव शोकेन दह्यते स्म ततोऽब्रवीत् ॥ ४२ ॥
समाप्यन्त एवमेव मम राज्यस्य दुर्गतिः ।
कं यास्यति महीयं हि धार्मिकं वाप्यधार्मिकम् ॥ ४३ ॥
अन्तःसत्त्वा महाभागा या सा भार्याप्युपस्थिता ।
उपेक्षिता प्रमादेन मन्दभाग्येन सा मया ॥ ४४ ॥
अत ऊर्ध्वं मया दत्तं पानीयं विधिनापि च ।
पास्यन्ति पितरः कोष्णनिश्वासेन मलीमसम् ।
पिण्डविच्छेददुःखार्ताः पिण्डानि च तथैव हि ॥ ४५ ॥
क लभ्यते सा ललना साक्षाल्लक्ष्मीरिव रूपिणी ।
न मन्दभाग्यं पापिष्ठं ज्ञात्वा मां पुनरेष्यति ॥ ४६ ॥
नैवं विधस्य दुष्टस्य दारुणस्य दुरात्मनः ।
तथाविधा वरारोहा भार्या भवितुमर्हति ॥ ४७ ॥
एवं विलपमानस्य दुष्यन्तस्य महीपतेः ।
व्यतीयुस्त्रीणि वर्षाणि शोचतोऽहर्निशं द्विज ॥ ४८ ॥

स्वीकरणम् ।

अथासौ देवराजेन समाहूतो ययौ दिवम् ।
त्रिदिवेशैरवध्यानां निधनाय सुरद्विषाम् ॥ १ ॥
निर्वाह्य देवताकर्म रथं मातलिसारथिम् ।
आरुह्य भुवमायास्यन् मारीचाश्रममभ्ययात् ॥ २ ॥
तत्रकाचिज्जरा नारी ब्राह्मणी बालमद्भुतम् ।
लालयन्ती नृपं वीक्ष्य ददावासनमन्तिके ॥ ३ ॥

वालस्तु तावद्वेगेन प्रविश्य गहनं वनम् ।
निबध्य पञ्च पञ्चास्यान् लताभिः समुपानयत् ॥ ४ ॥
उवाच वृद्धामेतेषां कति दन्ताः समुन्नताः ।
निम्ना वा कति मध्या वा गणयित्वा वदाशु मे ॥ ५ ॥
दुष्यन्तस्तु तदाखदय बालस्याद्भुतविक्रमम् ।
चिन्तयामास मेधावी भार्याविरहकातरः ॥ ६ ॥
पौरवादप्यहो वालो धत्तेऽधिकपराक्रमम् ।
सर्वराजश्रियायुक्तो न विप्रस्तदयं भवेत् ॥ ७ ॥
चेतो मे वहते स्नेहं दृष्ट्वा वालं दुरासदम् ।
कारणं तत्र पश्यामि यन्ममेयमपुत्रता ॥ ८ ॥
इति चिन्तापरे राज्ञि सिंहः कोऽपि स्वबन्धनम् ।
छित्त्वा नखेन दुर्वार्यो गन्तुं प्राक्रमत द्विज ॥ ९ ॥
दूरादुत्प्लुत्य तं वालो निगृह्य पुनरेव तम् ।
उवाच किं रे पञ्चास्य प्राप्तोऽसि ब्रह्मबालकम् ।
पौरवोऽस्मि न जानासि क्षत्रियो रणकोविदः ॥ १० ॥
तदुपश्रुत्य राजर्षेः किञ्चिदुच्छ्वसितं मनः ।
वालभाषितमित्येव सम्यक् श्रद्धापि नाभवत् ॥ ११ ॥
अथागमत् काश्यपोऽपि वनात्कुशसमिद्धरः ।
विलोक्य तत्र राजानं दुष्यन्तं मुमुदे भृशम् ॥ १२ ॥
आशीभिस्तमथाभ्यर्च्य विधायातिथिसत्क्रियाम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये देवानाञ्च तपोधनः ॥ १३ ॥
राजा तत्सर्वमाचष्ट मुनिवाचा गतश्रमः ।
अथोवाच विहस्येषत् कोऽयं वालस्तपोधन ।
महावलो महावाहुः पौरवोऽहमिति ब्रुवन् ॥ १४ ॥

कश्यप उवाच—

तवैव तनयो राजन् यमसूत शकुन्तला ।

दमनः सर्वसत्त्वानां सिंहादीनां महाबलः ॥ १५ ॥
तत्सर्वदमनो नाम मयैवास्य निरूपितम् ।
भरस्वेति च वच्मि त्वां ततोऽसौ भरतो भवेत् ॥ १६ ॥
दुर्वाससो हि शापेन त्वया या विस्मृता पुरा ।
त्यक्ता मेनकयानीय मयि न्यस्ता मनस्विनी ।
सा ते शकुन्तला राज्ञी सुषावेमं कुमारकम् ॥ १७ ॥
महाबलो महाप्राणो दुर्द्धर्षः सर्वभूभुजाम् ।
बद्धैः क्रीडति पञ्चास्यैः प्रबिभेत्यपि नान्तकात् ॥ १८ ॥
मया विमृष्टं दुर्दान्तः शिशुरेष ममाश्रमे ।
वस्तुं नार्हति बाल्याद्धि कदा किं नु समाचरेत् ॥ १९ ॥
अत एनं महीभर्त्तुः सुतं तं प्रापयाम्यहम् ।
त्वमथो देवकार्यार्थं गतः स्वर्गं ततो मया ॥ २० ॥
कृतो विलम्बो राजर्षे शापान्तेऽपि तव प्रभो ।
एष ते गृह्यतां पुत्रश्चक्रवर्त्ती भविष्यति ॥
आहर्त्ता सर्वयज्ञानां महाभागवतो नृप ॥ २१ ॥
इत्युक्त्वा ब्राह्मणीं प्राह वृद्धां देवगुरुर्मुनिः ।
शकुन्तलामिहानीय समर्पय महापतौ ॥ २२ ॥
इत्युक्त्वा ब्राह्मणी गत्वा समाहूय शकुन्तलाम् ।
राज्ञे समर्पयामास राजा च मुमुदे भृशम् ॥ २३ ॥
अथानुज्ञाप्य मारीचं सभार्य्यः ससुतो नृपः ।
हृष्टः स्वपुरमागच्छद्देवयानेन मारिष ॥ २४ ॥
स एव भरतो नाम दुष्यन्ततनयो महान् ।
ववृधे तत्र विप्रेन्द्र शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ २५ ॥

द्रौपदीचीरहरणम् ।

सभायामानयनम् ।

दुर्योधन उवाच—

एहि क्षत्तद्रौपदीमानयस्व
प्रियां भार्यां संमतां पाण्डवानाम् ।
संमार्जतां वेश्म परैतु शीघ्रं
तत्रास्तु दासीभिरपुण्यशीला ॥ १ ॥

विदुर उवाच—

दुर्विभाषं भाषितं त्वादृशेन
न मन्द संबुद्ध्यसि पाशबद्धः ।
प्रपाते त्वं लम्बमानो न वेत्सि
व्याघ्रान्मृगः कोपयसेऽतिवेलम् ॥ २ ॥
आशीविषास्ते शिरसि पूर्णकोपा महाविषाः ।
मा कोपिष्ठाः सुमन्दात्मन्मा गमस्त्वं यमक्षयम् ॥ ३ ॥
न हि दासीत्वमापन्ना कृष्णा भवितुमर्हति ।
अनीशेन हि राज्ञैषा पणे न्यस्तेति मे मतिः ॥ ४ ॥
अयं धत्ते वेणुरिवात्मघाती
फलं राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
द्यूतं हि वैराय महाभयाय
मत्तो न बुध्यत्ययमन्तकालम् ॥ ५ ॥
नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददीत ।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेद्रुशतीं पापलोक्याम् ॥ ६ ॥

समुच्चरन्त्यतिवादाश्च वक्त्रा-
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य नाममर्मसु ते पतन्ति
तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ७ ॥

अजो हि शस्त्रमगिलत्किलैकः
शस्त्रे विपन्ने शिरसास्य भूमौ
निकृन्तनं स्वस्य कण्ठस्य घोरं
तद्वद्वैरं मा कृथाः पाण्डुपुत्रैः ॥ ८ ॥

न किंचिदित्थं प्रवदन्ति पार्था
वनेचरं वा गृहमेधिनं वा ।
तपस्विनं वा परिपूर्णविद्यं
भषन्ति हैवं श्वनराः सदैव ॥ ९ ॥

द्वारं सुघोरं नरकस्य जिह्मं
न बुध्यते धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
तमन्वेतारो बहवः कुरूणां
द्यूतोदये सह दुःशासनेन ॥ १० ॥

मज्जन्त्यलाबूनि शिलाः प्लवन्ते
मुह्यन्ति नावोम्भसि शश्वदेव ।
मूढो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति ॥ ११ ॥

अन्तो नूनं भवितायं कुरूणां
सुदारुणः सर्वहरो विनाशः ।
वाचः काव्याः सुहृदां पथ्यरूपा
न श्रूयन्ते वर्धते लोभ एव ॥ १२ ॥

वैशंपायन उवाच—

धिगस्तु क्षत्तारमिति ब्रुवाणो

दर्पेण मत्तो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
अवैक्षत प्रातिकामीं सभाया-
मुवाच चैनं परमार्यमध्ये ॥ १३ ॥

दुर्योधन उवाच—

त्वं प्रातिकामिन्द्रौपदीमानयस्व
न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः ।
क्षत्ता ह्ययं विवदत्येव भीतो
न चास्माकं वृद्धिकामः सदैव ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तः प्रातिकामी स सूतः
प्रायाच्छीघ्रं राजवचो निशम्य ।
प्रविश्य च श्वेव हि सिंहगोष्ठं
समासदन्महिषीं पाण्डवानाम् ॥ १५ ॥

प्रातिकाम्युवाच—

युधिष्ठिरो द्यूतमदेन मत्तो
दुर्योधनो द्रौपदि त्वामजैषीत् ।
सा त्वं प्रपद्यस्व धृतराष्ट्रस्य वेश्म
नयामि त्वां कर्मणे याज्ञसेनि ॥ १६ ॥

द्रौपद्युवाच—

कथं त्वेवं वदसि प्रातिकामि-
न्को हि दीव्येद्भार्यया राजपुत्रः ।
मूढो राजा द्यूतमदेन मत्तो
ह्यभून्नान्यत्कैतवमस्य किंचित् ॥ १७ ॥

प्रातिकाम्युवाच—

यदा नाभूत्कैतवमन्यदस्य
तदाऽदेवीत्पाण्डवोऽजातशत्रुः ।

न्यस्ताः पूर्वं भ्रातरस्तेन राज्ञा
स्वयं चात्मा त्वमथो राजपुत्रि ॥ १८ ॥

द्रौपद्युवाच—

गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतज
किं तु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवा नु माम् ॥ १९ ॥
एतज्ज्ञात्वा समागच्छ ततो मां नय सूतज ।
ज्ञात्वा चिकीर्षितमहं राज्ञो यास्यामि दुःखिता ॥ २० ॥

वैशंपायन उवाच—

सभां गत्वा स चोवाच द्रौपद्यास्तद्वचस्तदा ।
युधिष्ठिरं नरेन्द्राणां मध्ये स्थितमिदं वचः ॥ २१ ॥
कस्येशो नः पराजैषीरिति त्वामाह द्रौपदी ।
किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवापि माम् ॥ २२ ॥

वैशंपायन उवाच—

युधिष्ठिरस्तु निश्चेता गतसत्व इवाभवत् ।
न तं सूतं प्रत्युवाच वचनं साध्वसाधु वा ॥ २३ ॥

दुर्योधन उवाच—

इहैवागत्य पाञ्चाली प्रश्नमेनं प्रभाषताम् ।
इहैव सर्वे शृण्वन्तु तस्याश्चैतस्य यद्वचः ॥ २४ ॥

वैशंपायन उवाच—

स गत्वा राजभवनं दुर्योधनवशानुगः ।
उवाच द्रौपदीं सूतः प्रातिकामी व्यथन्निव ॥ २५ ॥
सभ्यास्त्वमी राजपुत्र्याह्वयन्ति
मन्ये प्राप्तः संशयः कौरवाणाम् ।
न वै समृद्धिं पालयते लघीयान्
यस्त्वां सभां नेष्यति राजपुत्रि ॥ २६ ॥

द्रौपद्युवाच—

एवं नूनं व्यदधात् संविधाता
स्पर्शावुभौ स्पृशतो वृद्धबालौ ।
धर्मं त्वेकं परमं प्राह लोके
स नः शमं धास्यति गोप्यमानः ॥ २७ ॥
सोऽयं धर्मो मा त्यगात्कौरवान् वै
सभ्यान्गत्वा पृच्छ धर्म्यं वचो मे ।
ते मां ब्रूयुर्निश्चितं तत्करिष्ये
धर्मात्मानो नीतिमन्तो वरिष्ठाः ॥ २८ ॥

वैशम्पायन उवाच—

श्रुत्वा सूतस्तद्वचो याज्ञसेन्याः
सभां गत्वा प्राह वाक्यं तदानीम् ।
अधोमुखास्ते न च किंचिदूचु-
र्निर्बन्धं तं धार्तराष्ट्रस्य बुद्ध्वा ॥ २९ ॥
युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनचिकीर्षितम् ।
द्रौपद्याः संमतं दूतं प्राहिणोद्भरतर्षभ ॥ ३० ॥
एकवस्त्रा त्वधोनीवी रोदमाना रजस्वला ।
सभामागम्य पाञ्चालि श्वशुरस्याग्रतो भव ॥ ३१ ॥
अथ त्वामागतां दृष्ट्वा राजपुत्रीं सभां तदा ।
सभ्याः सर्वे विनिन्देरन्मनोभिर्धृतराष्ट्रजम् ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच—

स गत्वा त्वरितं दूतः कृष्णाया भवनं नृप ।
न्यवेदयन्मतं धीमान्धर्मराजस्य निश्चितम् ॥ ३३ ॥
पाण्डवाश्च महात्मानो दीना दुःखसमन्विताः ।
सत्येनातिपरीताङ्गा नोदीक्षन्ते स्म किंचन ॥ ३४ ॥

ततस्त्वेषां मुखमालोक्य राजा
दुर्योधनः सूतमुवाच हृष्टः ।
इहैवैतामानय प्रातिकामिन्
प्रत्यक्षमस्याः कुरवो ब्रुवन्तु ॥ ३५ ॥

ततः सूतस्तस्य वशानुगामी
भीतश्च कोपाद्द्रुपदात्मजायाः ।
विहाय मानं पुनरेव सभ्या-
नुवाच कृष्णां किमहं ब्रवीमि ॥ ३६ ॥

दुर्योधन उवाच—

दुःशासनैष मम सूतपुत्रो
वृकोदरादुद्विजतेऽल्पचेताः ।
स्वयं प्रगृह्यानय याज्ञसेनीं
किं ते करिष्यन्त्यवशाः सपत्नाः ॥ ३७ ॥

वैशंपायन उवाच—

ततः समुत्थाय स राजपुत्रः
श्रुत्वा भ्रातुः शासनं रक्तदृष्टिः ।
प्रविश्य तद्वेश्म महारथाना-
मित्यब्रवीद्द्रौपदीं राजपुत्रीम् ॥ ३८ ॥

एह्येहि पाञ्चालि जिताऽसि कृष्णे ।
दुर्योधनं पश्य विमुक्तलज्जा ।
कुरून् भजस्वायतपत्रनेत्रे
धर्मेण लब्धाऽसि सभां परेहि ॥ ३९ ॥

ततः समुत्थाय सुदुर्मनाः सा
विवर्णमामृज्य मुखं करेण ।
आर्ता प्रदुद्राव यतः स्त्रियस्ता
वृद्धस्य राज्ञः कुरुपुङ्गवस्य ॥ ४० ॥

ततो जवेनाभिससार रोषाद्
दुःशासनस्तामभिगर्जमानः ।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु
जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम् ॥ ४१ ॥
ये राजसूयावभृथे जलेन
महाक्रतौ मन्त्रपूतेन सिक्ताः ।
ते पाण्डवानां परिभूय वीर्यं
बलात्प्रमृष्टा धृतराष्ट्रजेन ॥ ४२ ॥
स तां पराकृष्य सभासमीप-
मानीय कृष्णामतिदीर्घकेशीम् ।
दुःशासनो नाथवतीमनाथवच्
चकर्ष वायुः कदलीमिवार्ताम् ॥ ४३ ॥
सा कृष्यमाणा नमिताङ्गयष्टिः
शनैरुवाचाथ रजस्वलाऽस्मि ।
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे
सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य ॥ ४४ ॥
ततोऽब्रवीत्तां प्रसभं निगृह्य
केशेषु कृष्णेषु तदा स कृष्णाम् ।
कृष्णं च जिष्णुं च हरिं नरं च
त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनि ॥ ४५ ॥
रजस्वला वा भव याज्ञसेनि
एकाम्बरा वाप्यथवा विवस्त्रा ।
द्यूते जिता चासि कृताऽसि दासी
दासीषु वासश्च यथोपजोषम् ॥ ४६ ॥

वैशंपायन उवाच—

प्रकीर्णकेशी पतितार्धवस्त्रा

दुःशासनेन व्यवधूयमाना ।
ह्रीमत्यमर्षेण च दह्यमाना
शनैरिदं वाक्यमुवाच कृष्णा ॥ ४७ ॥

द्रौपद्युवाच—

इमे सभायामुपनीतशास्त्राः
क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ।
गुरुस्थाना गुरवश्चैव सर्वे
तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ॥ ४८ ॥
नृशंसकर्मंस्त्वमनार्यवृत्त
मा मा विवस्त्रां कुरु मा विकार्षीः ।
न मर्षयेयुस्तव राजपुत्राः
सेन्द्रापि देवा यदि ते सहायाः ॥ ४९ ॥
धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा
धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्यः ।
वाचापि भर्तुः परमाणुमात्र-
मिच्छामि दोषं न गुणान्विसृज्य ॥ ५० ॥
इदं त्वकार्यं कुरुवीरमध्ये
रजस्वलां यत्परिकर्षसे माम् ।
न चापि कश्चित्कुरुतेऽत्र कुत्सां
ध्रुवं तवेदं मतमभ्युपेतः ॥ ५१ ॥
धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां
धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम् ।
यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां
प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ॥ ५२ ॥
द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्वं
क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोपि ।

राज्ञस्तथाहीममधर्ममुग्रं
न लक्ष्यन्ते कुरुवृद्धमुख्याः ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तथा ब्रुवन्ती करुणं सुमध्यमा
भर्तॄन्कटाक्षैः कुपितानपश्यत् ।
सा पाण्डवान्कोपपरीतदेहान्
सन्दीपयामास कटाक्षपातैः ॥ ५४ ॥

हृतेन राज्येन तथा धनेन
रत्नैश्च मुख्यैर्न तथा बभूव ।
यथा त्रपाकोपसमीरितेन
कृष्णाकटाक्षेण बभूव दुःखम् ॥ ५५ ॥

दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णा-
मवेक्षमाणां कृपणान्पतींस्तान् ।
आधूय वेगेन विसंज्ञकल्पा-
मुवाच दासीति हसन्सशब्दम् ॥ ५६ ॥

कर्णस्तु तद्वाक्यमतीव हृष्टः
संपूजयामास हसन्सशब्दम् ।
गान्धारराजः सुबलस्य पुत्र-
स्तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत् ॥ ५७ ॥

सभ्यास्तु ये तत्र बभूवुरन्ये
ताभ्यामृते धार्तराष्ट्रेण चैव ।
तेषामभूद् दुःखमतीव कृष्णां
दृष्ट्वा सभायां परिकृष्यमाणाम् ॥ ५८ ॥

भीष्म उवाच—

न धर्मसौक्ष्म्यात्सुभगे विवेक्तुं
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत् ।

अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं
स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य ॥ ५९ ॥
त्यजेत सर्वां पृथिवीं समृद्धां
युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात् ।
उक्तं जितोऽस्मीति च पाण्डवेन
तस्मान्न शक्नोमि विवेक्तुमेतत् ॥ ६० ॥
द्यूतेऽद्वितीयः शकुनिर्नरेषु
कुन्तीसुतस्तेन निसृष्टकामः ।
न मन्यते तां निकृतिं युधिष्ठिर-
स्तस्मान्न ते प्रश्नमिमं ब्रवीमि ॥ ६१ ॥

द्रौपद्युवाच—

आहूय राजा कुशलैरनार्यै-
र्दुष्टात्मभिर्नैकृतिकैः सभायाम् ।
द्यूतप्रियैर्नातिकृतप्रयत्नः
कस्मादयं नाम निसृष्टकामः ॥ ६२ ॥
अशुद्धभावैर्निकृतिप्रवृत्तै-
रबुध्यमानः कुरुपाण्डवाग्र्यः ।
संभूय सर्वैश्च जितोऽपि यस्मात्
पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः ॥ ६३ ॥
तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभाया-
मीशाः सुतानां च तथा स्नुषाणाम् ।
समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं
विब्रूत मे प्रश्नमिमं यथावत् ॥ ६४ ॥
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।

नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥ ६५ ॥

वैशंपायन उवाच—

तथा ब्रुवन्तीं करुणं रुदन्ती-
मवेक्षमाणां कृपणान्पतींस्तान् ।
दुःशासनः परुषाण्यप्रियाणि
वाक्यान्युवाचामधुराणि चैव ॥ ६६ ॥
तां कृष्यमाणां च रजस्वलां च
स्रस्तोत्तरीयामतदर्हमाणाम् ।
वृकोदरः प्रेक्ष्य युधिष्ठिरं च
चकार कोपं परमार्तरूपः ॥ ६७ ॥

चीर हरणम् ।

भीम उवाच--

भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर ।
न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि ॥ १ ॥
काश्यो यद्धनमाहार्षीद्द्रव्यं यच्चान्यदुत्तमम् ।
तथाऽन्ये पृथिवीपाला यानि रत्नान्युपाहरन् ॥ २ ॥
वाहनानि धनं चैव कवचान्यायुधानि च ।
राज्यमात्मा वयं चैव कैतवेन हृतं परैः ॥ ३ ॥
न च मे तत्र कोपोऽभूत्सर्वस्येशो हि नो भवान् ।
इमं त्वतिक्रमं मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते ॥ ४ ॥
एषा ह्यनर्हती बाला पाण्डवान्प्राप्य कौरवैः ।
त्वत्कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥ ५ ॥
अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन्निपात्यते ।
बाहू ते संप्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय ॥ ६ ॥

अर्जुन उवाच—

न पुरा भीमसेन त्वमीदृशीर्वदिता गिरः।
परैस्ते नाशितं नूनं नृशंसैर्धर्मगौरवम् ॥ ७ ॥
न सकामाः परे कार्या धर्ममेवाचरोत्तमम्।
भ्रातरं धार्मिकं ज्येष्ठं कोऽतिवर्तितुमर्हति ॥ ८ ॥
आहूतो हि परै राजा क्षात्रं व्रतमनुस्मरन्।
दीव्यते परकामेन तन्नः कीर्तिकरं महत् ॥ ९ ॥

भीमसेन उवाच

एवमस्मिन्कृतं विद्यां यदि नाहं धनञ्जय।
दीप्तेऽग्नौ सहितौ बाहू निर्दहेयं बलादिव ॥ १० ॥

वैशंपायन उवाच—

तथा तान् दुःखितान्दृष्ट्वा पाण्डवान्धृतराष्ट्रजः।
कृष्यमाणां च पाञ्चालीं विकर्ण इदमब्रवीत् ॥ ११ ॥
याज्ञसेन्या यदुक्तं तद्वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः।
अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः ॥ १२ ॥
भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमावुभौ।
समेत्य नाहतुः किंचिद्विदुरश्च महामतिः ॥ १३ ॥
भारद्वाजश्च सर्वेषामाचार्यः कृप एव च।
कुत एतावपि प्रश्नं नाहतुर्द्विजसत्तमौ ॥ १४ ॥
ये त्वन्ये पृथिवीपालाः समेताः सर्वतो दिशम्।
कामक्रोधौ समुत्सृज्य ते ब्रुवन्तु यथामति ॥ १५ ॥
यदिदं द्रौपदी वाक्यमुक्तवत्यसकृच्छुभा।
विमृश्य कस्य कः पक्षः पार्थिवा वदतोत्तरम् ॥ १६ ॥

वैशंपायन उवाच—

एवं स बहुशः सर्वानुक्तवांस्तान्सभासदः।
न च ते पृथिवीपालास्तमूचुः साध्वसाधु वा ॥ १७ ॥

उक्त्वाऽसकृत्तथा सर्वान्विकर्णः पृथिवीपतीन् ।
पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य निःश्वसन्निदमब्रवीत् ॥ १८ ॥
विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथञ्चन ।
मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तद्धि वक्ष्यामि कौरवाः ॥ १९ ॥
चत्वार्याहुर्नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम् ।
मृगयां पानमक्षांश्च ग्राम्ये चैवातिरक्तताम् ॥ २० ॥
एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्तते ।
यथाऽयुक्तेन च कृतां क्रियां लोको न मन्यते ॥ २१ ॥
तथेयं पाण्डुपुत्रेण व्यसने वर्तता भृशम् ।
समाहूतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः ॥ २२ ॥
साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता ।
जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन कृतः पणः ॥ २३ ॥
इयं च कीर्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना ।
एतत्सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम् ॥ २४ ॥

वैशंपायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा महान्नादः सभ्यानामुदतिष्ठत ।
विकर्णं शंसमानानां सौबलं चापि निन्दताम् ॥ २५ ॥
तस्मिन्नुपरते शब्दे राधेयः क्रोधमूर्च्छितः ।
प्रगृह्य रुचिरं बाहुमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

कर्ण उवाच—

दृश्यन्ते वै विकर्णेह वैकृतानि बहून्यपि ।
तज्जातस्तद्विनाशाय यथाऽग्निररणिप्रजः ॥ २७ ॥
एते न किंचिदप्याहुश्चोदिता ह्यपि कृष्णया ।
धर्मेण विजितामेतां मन्यन्ते द्रुपदात्मजाम् ॥ २८ ॥
त्वं तु केवलबाल्येन धार्तराष्ट्र विदीर्यसे ।
यद् ब्रवीषि सभामध्ये बालः स्थविरभाषितम् ॥ २९ ॥

न च धर्मं यथावत्त्वं वेत्सि दुर्योधनावर ।
यद् ब्रवीषि जितां कृष्णां न जितेति सुमन्दधीः ॥ ३० ॥
कथं ह्यविजितां कृष्णां मन्यसे धृतराष्ट्रज ।
यदा सभायां सर्वस्वं न्यस्तवान्पाण्डवाग्रजः ॥ ३१ ॥
अभ्यन्तरा च सर्वस्वे द्रौपदी भरतर्षभ ।
एवं धर्मजितां कृष्णां मन्यसे न जितां कथम् ॥ ३२ ॥
कीर्तिता द्रौपदी वाचा अनुज्ञाता च पाण्डवैः ।
भवत्यविजिता केन हेतुनैषा मता तव ॥ ३३ ॥
मन्यसे वा सभामेतामानीतामेकवाससम् ।
अधर्मेणेति तत्रापि शृणु मे वाक्यमुत्तमम् ॥ ३४ ॥
एको भर्ता स्त्रिया देवैर्विहितः कुरुनन्दन ।
इयं त्वनेकवशगा वन्धकीति विनिश्चिता ॥ ३५ ॥
अस्याः सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः ।
एकाम्बरधरत्वं वाऽप्यथवाऽपि विवस्त्रता ॥ ३६ ॥
यच्चैषां द्रविणं किंचिद्या चैषा ये च पाण्डवाः ।
सौवलेनेह तत्सर्वं धर्मेण विजितं वसु ॥ ३७ ॥
दुःशासन सुबालोऽयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः ।
पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर ॥ ३८ ॥

वैशंपायन उवाच—

तच्छ्रुत्वा पाण्डवाः सर्वे स्वानि वासांसि भारत ।
अवकीर्योत्तरीयाणि सभायां समुपाविशन् ॥ ३९ ॥
ततो दुःशासनो राजन्द्रौपद्या वसनं वलात् ।
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ ४० ॥
"आकृष्यमाणे वसने विललाप सुदुःखिता ।
ज्ञातं मया वसिष्ठेन पुरा गीतं महात्मना ॥ ४१ ॥
महत्यापदि संप्राप्ते स्मर्तव्यो भगवान् हरिः ।

इति निश्चित्य मनसा शरणागतवत्सलम् ॥
आकृष्यमाणे वसने द्रौपदी कृष्णमस्मरत् ॥ ४२ ॥
शङ्खचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत ।
गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागताम् ॥ ४३ ॥
हा कृष्ण द्वारकावासिन्क्वासि यादवनन्दन ।
इमामवस्थां संप्राप्तामनाथां किमुपेक्षसे ॥ ४४ ॥
गोविन्द द्वारकावासिन्कृष्ण गोपीजनप्रिय ।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥ ४५ ॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥ ४६ ॥
कृष्णकृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥ ४७ ॥
इत्यनुस्मृत्य कृष्णं सा हरिं त्रिभुवनेश्वरम् ।
प्रारुदद् दुःखिता राजन्मुखमाच्छाद्य भामिनी" ॥ ४८ ॥
तस्य प्रसादाद् द्रौपद्याः कृष्यमाणेऽम्बरे तदा ।
तद्रूपमपरं वस्त्रं प्रादुरासीदनेकशः ॥ ४९ ॥
नानारागविरागाणि वसनान्यथ वै प्रभो ।
प्रादुर्भवन्ति शतशो धर्मस्य परिपालनात् ॥ ५० ॥
ततो हलहलाशब्दस्तत्रासीद्धोरदर्शनः ।
तदद्भुततमं लोके वीक्ष्य सर्वे महीभृतः ॥ ५१ ॥
शशंसुर्द्रौपदीं तत्र कुत्सन्तो धृतराष्ट्रजम् ।
'धिग्धिगित्यशिवां वाचमुत्सृजन्कौरवान्प्रति ॥ ५२ ॥
यदा तु वाससां राशिः सभामध्ये समाचितः ।'
तदा दुःशासनः श्रान्तो व्रीडितः समुपाविशत् ॥ ५३ ॥
शशाप तत्र भीमस्तु राजमध्ये बृहत्स्वनः ।
क्रोधाद्विस्फुरमाणोष्ठो विनिष्पिष्य करे करम् ॥ ५४ ॥

भीम उवाच—

इदं मे वाक्यमादध्वं क्षत्रिया लोकवासिनः ।
नोक्तपूर्वं नरैरन्यैर्न चान्यो यद्वदिष्यति ॥ ५५ ॥
यद्येतदेवमुक्त्वाऽहं न कुर्यां पृथिवीश्वराः ।
पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम् ॥ ५६ ॥
अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्य च ।
न पिबेयं बलाद्वक्षो भित्त्वा चेद्रुधिरं युधि ॥ ५७ ॥

वैशंपायन उवाच—

तस्य ते तद्वचः श्रुत्वा रौद्रं लोमप्रहर्षणम् ।
प्रचक्रुर्बहुलां पूजां कुत्सन्तो धृतराष्ट्रजम् ॥ ५८ ॥
न विब्रुवन्ति कौरव्याः प्रश्नमेतमिति स्म ह ।
सुजनः क्रोशति स्मात्र धृतराष्ट्रं विगर्हयन् ॥ ५९ ॥
ततो बाहू समुत्क्षिप्य निवार्य च सभासदः ।
विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ६० ॥

विदुर उवाच—

द्रौपदी प्रश्नमुक्त्वैवं रोरवीति त्वनाथवत् ।
न च विब्रूत तं प्रश्नं सभ्या धर्मोऽत्र पीड्यते ॥ ६१ ॥
सभां प्रपद्यते प्रश्नः प्रज्वलन्निव हव्यवाट् ।
तं वै सत्येन धर्मेण सभ्याः प्रशमयन्त्युत ॥ ६२ ॥
धर्म्यं प्रश्नमतो ब्रूयादार्यः सत्येन मानवः ।
विब्रूयुस्तत्र तं प्रश्नं कामक्रोधबलातिगाः ॥ ६३ ॥
विकर्णेन यथाप्रज्ञमुक्तः प्रश्नो नराधिपाः ।
भवन्तोऽपि हि तं प्रश्नं विब्रुवन्तु यथामति ॥ ६४ ॥
यो हि प्रश्नं न विब्रूयाद्धर्मदर्शी सभां गतः ।
अनृते या फलावाप्तिस्तस्याः सोऽर्धं समश्नुते ॥ ६५ ॥

यः पुनर्वितथं ब्रूयाद्धर्मदर्शी सभां गतः ।
अनृतस्य फलं कृत्स्नं स प्राप्नोतीति निश्चयः ॥ ६६ ॥

वैशंपायन उवाच—

विदुरस्य वचः श्रुत्वा नोचुः किंचन पार्थिवाः ।
कर्णो दुःशासनं त्वाह कृष्णां दासीं गृहान्नय ॥ ६७ ॥
तां वेपमानां सव्रीडां प्रलपन्तीं स्म पाण्डवान् ।
दुःशासनः सभामध्ये विचकर्ष तपस्विनीम् ॥ ६८ ॥

द्रौपद्या विलापः ।

द्रौपद्युवाच—

पुरस्तात्करणीयं मे न कृतं कार्यमुत्तरम् ।
विह्वलाऽस्मि कृताऽनेन कर्षता बलिना बलात् ॥ १ ॥
अभिवादं करोम्येषां कुरूणां कुरुसंसदि ।
न मे स्यादपराधोऽयं तदिदं न कृतं मया ॥ २ ॥

वैशंपायन उवाच—

सा तेन च समाधूता दुःखेन च तपस्विनी ।
पतिता विललापेदं सभायामतथोचिता ॥ ३ ॥

द्रौपद्युवाच—

स्वयंवरे यास्मि नृपैर्दृष्टा रङ्गे समागतैः ।
न दृष्टपूर्वा चान्यत्र साऽहमद्य सभां गता ॥ ४ ॥
यां न वायुर्न चादित्यो दृष्टवन्तौ पुरा गृहे ।
साऽहमद्य सभामध्ये दृष्टास्मि जनसंसदि ॥ ५ ॥
यां न मृष्यन्ति वातेन स्पृश्यमानां गृहे पुरा ।
स्पृश्यमानां सहन्तेऽद्य पाण्डवास्तां दुरात्मना ॥ ६ ॥
मृष्यन्ति कुरवश्चेमे मन्ये कालस्य पर्ययम् ।

स्नुषां दुहितरं चैव क्लिश्यमानामनर्हतीम् ॥ ७ ॥
किन्वतः कृपणं भूयो यदहं स्त्री सती शुभा ।
सभामध्यं विगाहेऽद्य क्व नु धर्मो महीक्षिताम् ॥ ८ ॥
धर्म्यां स्त्रियं सभां पूर्वे न नयन्तीति नः श्रुतम् ।
स नष्टः कौरवेयेषु पूर्वो धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥
कथं हि भार्या पाण्डूनां पार्षतस्य स्वसा सती ।
वासुदेवस्य च सखी पार्थिवानां सभामियाम् ॥ १० ॥
तामिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम् ।
ब्रूत दासीमदासीं वा तत्करिष्यामि कौरवाः ॥ ११ ॥
अयं मां सुदृढं क्षुद्रः कौरवाणां यशोहरः ।
क्लिश्नाति नाहं तत्सोढुं चिरं शक्ष्यामि कौरवाः ॥ १२ ॥
जितां वाऽप्यजितां वापि मन्यध्वं मां यथा नृपाः ।
तथा प्रत्युक्तमिच्छामि तत्करिष्यामि कौरवाः ॥ १३ ॥

भीष्म उवाच—

उक्तवानस्मि कल्याणि धर्मस्य परमा गतिः ।
लोके न शक्यते ज्ञातुमपि विप्रैर्महात्मभिः ॥ १४ ॥
बलवांश्च यथा धर्मं लोके पश्यति पूरुषः ।
स धर्मो धर्मवेलायां भवत्यभिहतः परः ॥ १५ ॥
न विवेक्तुं च ते प्रश्नमिमं शक्नोमि निश्चयात् ।
सूक्ष्मत्वाद्गहनत्वाच्च कार्यस्यास्य च गौरवात् ॥ १६ ॥
नूनमन्तः कुलस्यास्य भविता न चिरादिव ।
तथा हि कुरवः सर्वे लोभमोहपरायणाः ॥ १७ ॥
कुलेषु जाताः कल्याणि व्यसनैराहता भृशम् ।
धर्म्यान्मार्गान्न च्यवन्ते येषां नस्त्वं वधूः स्थिता ॥ १८ ॥
उपपन्नं च पाञ्चालि तवेदं वृत्तमीदृशम् ।
यत्कृच्छ्रमपि संप्राप्ता धर्ममेवान्ववेक्षसे ॥ १९ ॥

एते द्रोणादयश्चैव वृद्धा धर्मविदो जनाः ।
शून्यैः शरीरैस्तिष्ठन्ति गतासव इवानताः ॥ २० ॥
युधिष्ठिरस्तु प्रश्नेऽस्मिन्प्रमाणमिति मे मतिः ।
अजितां वा जितां वेति स्वयं व्याख्यातुमर्हति ॥ २१ ॥

प्रतिज्ञाकरणम् ।

वैशंपायन उवाच—

तथा तु दृष्ट्वा बहु तत्र देवीं
रोरूयमाणां कुररीमिवार्ताम् ।
नोचुर्वचः साध्वथवाऽप्यसाधु
महीक्षितो धार्तराष्ट्रस्य भीताः ॥ १ ॥
दृष्ट्वा तथा पार्थिवपुत्रपौत्रां-
स्तूष्णींभूतान्धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
स्मयन्निवेदं वचनं बभाषे
पाञ्चालराजस्य सुतां तदानीम् ॥ २ ॥

दुर्योधन उवाच—

तिष्ठत्वयं प्रश्नं उदारसत्वे
भीमेऽर्जुने सहदेवे तथैव ।
पत्यौ च ते नकुले याज्ञसेनि
वदन्त्वेते वचनं त्वत्प्रसूतम् ॥ ३ ॥
अनीश्वरं विब्रुवन्त्वार्यमध्ये
युधिष्ठिरं तव पाञ्चालि हेतोः ।
कुर्वन्तु सर्वे चानृतं धर्मराजं
पाञ्चालि त्वं मोचयसे दासभावात् ॥ ४ ॥
धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा
स्वयं चेदं कथयत्विन्द्रकल्पः ।

ईशो वा ते ह्यनीशोऽथवैष
वाक्यादस्य क्षिप्रमेकं भजस्व ॥ ५ ॥
सर्वे ह्यीमे कौरवेयाः सभायां
दुःखान्तरे वर्तमानास्तवैव ।
न विब्रुवन्त्यार्यसत्वा यथावत्
पतींश्च ते समवेद्याल्पभाग्यान् ॥ ६ ॥

वैशंपायन उवाच—

ततः सभ्याः कुरुराजस्य तस्य
वाक्यं सर्वे प्रशशंसुस्तथोच्चैः ।
चेलावेधांश्चापि चक्रुर्नदन्तो
हाहेत्यासीदपि चैवार्तनादः ॥ ७ ॥
श्रुत्वा तु तद्वाक्यमनोहरं त-
द्धर्षश्चासीत्कौरवाणां सभायाम् ।
सर्वे चासन्पार्थिवाः प्रीतिमन्तः
कुरुश्रेष्ठं धार्मिकं पूजयन्तः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरं च ते सर्वे समुदैक्षन्त पार्थिवाः ।
किं नु वक्ष्यति धर्मज्ञ इति साचीकृताननाः ॥ ॥ ९ ॥
किं नु वक्ष्यति बीभत्सुरजितो युधि पाण्डवः ।
भीमसेनो यमौ चोभौ भृशं कौतूहलान्विताः ॥ १० ॥
तस्मिन्नुपरते शब्दे भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ।
प्रगृह्य रुचिरं दिव्यं भुजं चन्दनचर्चितम् ॥ ११ ॥
यद्येष गुरुरस्माकं धर्मराजो महामनाः ।
न प्रभुः स्यात्कुलस्यास्य न वयं मर्षयेमहि ॥ १२ ॥
ईशो नः पुण्यतपसां प्राणानामपि चेश्वरः ।
मन्यते जितमात्मानं यद्येष विजिता वयम् ॥ १३ ॥
न हि मुच्येत मे जीवन्पदा भूमिमुपस्पृशन् ।

मर्त्यधर्मा परामृश्य पाञ्चाल्या मूर्धजानिमान् ॥ १४ ॥
पश्यध्वं ह्यायतौ वृत्तौ भुजौ मे परिघाविव ।
नैतयोरन्तरं प्राप्य मुच्येतापि शतक्रतुः ॥ १५ ॥
धर्मपाशसितस्त्वेवमधिगच्छामि सङ्कटम् ।
गौरवेण निरुद्धश्च निग्रहादर्जुनस्य च ॥ १६ ॥
धर्मराजनिसृष्टस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव ।
धार्तराष्ट्रानिमान्पापान्निष्पिषेयं तलासिभिः ॥ १७ ॥

वैशंपायन उवाच—

तमुवाच तदा भीष्मो द्रोणो विदुर एव च ।
क्षम्यतामिदमित्येवं सर्वं संभाव्यते त्वयि ॥ १८ ॥

कर्ण उवाच—

त्रयः किलेमे ह्यधना भवन्ति
दासः पुत्रश्चास्वतन्त्रा च नारी ।
दासस्य पत्नी त्वधनस्य भद्रे
हीनेश्वरा दासधनं च सर्वम् ॥ १६ ॥
प्रविश्य राज्ञः परिवारं भजस्व
तत्ते कार्यं शिष्टमादिश्यतेऽत्र ।
ईशास्तु सर्वे तव राजपुत्रि
भवन्ति वै धार्तराष्ट्रा न पार्थाः ॥ २० ॥
अन्यं वृणीष्व पतिमाशु भामिनि
यस्माद्दास्यं न लभसि देवनेन ।
अवाच्या वै पतिषु कामवृत्ति-
र्नित्यं दास्ये विदितं तत्तवास्तु ॥ २१ ॥
पराजितो नकुलो भीमसेनो
युधिष्ठिरः सहदेवार्जुनौ च ।

दासीभूता त्वं हि वै याज्ञसेनि
परजितास्ते पतयो नैव सन्ति ॥ २२ ॥
प्रयोजनं जन्मनि किं न मन्यते
पराक्रमं पौरुषं चैव पार्थः ।
पाञ्चाल्यस्य द्रुपदस्यात्मजामिमां
सभामध्ये यो व्यदेवीद्ग्लहेषु ॥ २३ ॥

वैशंपायन उवाच—

तद्वै श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षी
भृशं निशश्वास तदाऽऽर्तरूपः ।
राजानुगो धर्मपाशानुबद्धो
दहन्निवैनं क्रोधसंरक्तदृष्टिः ॥२४ ॥

भीम उवाच—

नाहं कुप्ये सूतपुत्रस्य राज-
न्नेष सत्यं दासधर्मः प्रदिष्टः ।
किं विद्विषो वै मामेवं व्याहरेयु-
र्नादेवीस्त्वं यद्यनया नरेन्द्र ॥ २५ ॥

वैशंपायन उवाच—

भीमसेनवचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
युधिष्ठिरमुवाचेदं तूष्णींभूतमचेतनम् ॥ २६ ॥
भीमार्जुनौ यमौ चैव स्थितौ ते नृप शासने ।
प्रश्नं ब्रूहि च कृष्णां त्वमजितां यदि मन्यसे ॥ २७ ॥
एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य वसनं स्वकम् ।
स्मयन्निवेद्य पाञ्चालीमैश्वर्यमदमोहितः ॥ २८ ॥
कदलीदण्डसदृशं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
गजहस्तप्रतीकाशं वज्रप्रतिमगौरवम् ॥ २९ ॥
अभ्युत्स्मयित्वा राधेयं भीममाधर्षयन्निव ।

द्रौपद्याः प्रेक्षमाणायाः सव्यमूरुमदर्शयत् ॥ ३० ॥
भीमसेनस्तमालोक्य नेत्रे उत्फाल्य लोहिते ।
प्रोवाच राजमध्ये तं सभां विश्रावयन्निव ॥ ३१ ॥
पितृभिः सह सालोक्यं मा स्म गच्छेद् वृकोदरः ।
यद्येतमूरुं गदया न भिन्द्यां ते महाहवे ॥ ३२ ॥

वैशंपायन उवाच—

क्रुद्धस्य तस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यः पावकार्चिषः ।
वृक्षस्येव विनिश्चेरुः कोटरेभ्यः प्रदह्यतः ॥ ३३ ॥

विदुर उवाच—

परं भयं पश्यत भीमसेना-
त्तद्बुध्यध्वं पार्थिवाः प्रातिपेयाः ।
दैवेरितो नूनमयं पुरस्ता-
त्परोऽनयो भरतेषूदपादि ॥ ३४ ॥
अतिद्यूतं कृतमिदं धार्तराष्ट्रा
यस्मात्स्त्रियं विवदध्वं सभायाम् ।
योगक्षेमौ नश्यतो वः समग्रौ
पापान्मन्त्रान्कुरवो मन्त्रयन्ति ॥ ३५ ॥
इमं धर्मं कुरवो जानताशु
ध्वस्ते धर्मे परिषत्संप्रदुष्येत् ।
इमां चेत्पूर्वं कितवोऽग्लहिष्य-
दीशोऽभविष्यदपराजितात्मा ॥ ३६ ॥
स्वप्ने यथैतद्धि जितं धनं स्या-
देवं मन्ये यस्य दीव्यत्यनीशः ।
गान्धारराजस्य वचो निशम्य
धर्मादस्मात्कुरवो माऽपयात ॥ ३७ ॥

दुर्योधन उवाच—

भीमस्य वाक्ये तद्वदेवार्जुनस्य
स्थितोऽहं वै यमयोश्चैवमेव।
युधिष्ठिरं ते प्रवदन्त्वनीश-
मथो दास्यान्मोक्ष्यसे याज्ञसेनि ॥ ३८ ॥

अर्जुन उवाच—

ईशो राजा पूर्वमासीद्ग्लहे नः
कुन्तीसुतो धर्मराजो महात्मा।
ईशस्त्वयं कस्य पराजितात्मा
तज्जानीध्वं कुरवः सर्व एव ॥ ३९ ॥

कर्ण उवाच

दुश्शासन निबोधेदं वचनं वै प्रभाषितम्।
किमनेन चिरं वीर नयस्व द्रुपदात्मजाम् ॥
दासीभावेन भुङ्क्ष्व त्वं यथेष्टं कुरुनन्दन ॥ ४० ॥

वैशंपायन उवाच—

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत्।
साधु कर्ण महाबाहो यथेष्टं क्रियतामिति ॥ ४१ ॥
ततो दुश्शासनस्तूर्णं द्रुपदस्य सुतां बलात्।
प्रवेशयितुमारब्धः स चकर्ष दुरात्मवान् ॥ ४२ ॥
ततो विक्रोशति तदा पाञ्चाली वरवर्णिनी।

द्रौपद्युवाच—

परित्रायस्व मां भीष्म द्रोण द्रौणे तथा कृप ॥ ४३ ॥
परित्रायस्व विदुर धर्मिष्ठो धर्मवत्सल।
धृतराष्ट्र महाराज परित्रायस्व वै स्नुषाम् ॥ ४४ ॥
गान्धारि त्वं महाभागे सर्वज्ञे सर्वदर्शिनि।
परित्रायस्व मां भीरुं सुयोधनभयार्दिताम् ॥ ४५ ॥

त्वमार्ये वीरजननि किं मां पश्यसि यादवीम् ।
क्लिश्यमानामनार्येण न त्रायसि वधूं स्वकाम् ॥ ४६ ॥
यदि लालप्यमानां मां न कश्चित्किंचिदब्रवीत् ।
हा हताऽस्मि सुमन्दात्मा सुयोधनवशं गता ॥ ४७ ॥
न वै पाण्डुर्नरपतिर्न धर्मो न च देवराट् ।
न वायुर्नाश्विनौ वाऽपि परित्रायन्ति वै स्नुषाम् ॥
धिक्कष्टं यदि जीवेयं मन्दभाग्या पतिव्रता ॥ ४८ ॥

विदुर उवाच—

शृणोमि वाक्यं तव राजपुत्रि
नेमे पार्थाः किंचिदपि ब्रुवन्ति ।
सा त्वं प्रियार्थं शृणु वाक्यमेत-
द्यदुच्यते पापमतिः कृतघ्नः ॥ ४६ ॥
सुयोधनः सानुचरः सुदुष्टः
सहैव राजा निकृतः सूनुना च ।
यद्येष वाचं महदुच्यमानां
न श्रोष्यते पापमतिः सुदुष्टः ॥ ५० ॥

वैशंपायन उवाच—

इत्येवमुक्त्वा द्रुपदस्य पुत्रीं
तत्ताऽब्रवीद्धृतराष्ट्रस्य पुत्रम् ।
मा क्लिश्यतां वै द्रुपदस्य पुत्रीं
मा त्वं चरीं द्रक्ष्यसि राजपुत्र ॥ ५१ ॥

वैशंपायन उवाच—

तमेवमुक्त्वा प्रथमं धृतराष्ट्रमुवाच ह ।

विदुर उवाच—

यद्येवं त्वं महाराज संक्लेशयसि द्रौपदीम् ॥ ५२ ॥
अचिरेणैव कालेन पुत्रस्ते सह मन्त्रिभिः ।

गमिष्यति क्षयं पापः पाण्डवक्षयकारणात् ॥ ५३ ॥
भीमार्जुनाभ्यां क्रुद्धाभ्यां माद्रीपुत्रद्वयेन च ।
तस्मान्निवारय सुतं मा विनाशं विचिन्तय ॥ ५४ ॥

वैशंपायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा मन्दबुद्धिर्नोत्तरं किंचिदब्रवीत् ।
ततो दुर्योधनस्तत्र दैवमोहबलात्कृतः ॥ ५५ ॥
अचिन्त्य तत्तुर्वचनं हर्षेणायतलोचनः ।
उरू दर्शयते पापो द्रौपद्या वै मुहुर्मुहुः ॥ ५६ ॥
ऊरौ संदर्श्यमाने तु निरीक्ष्य तु सुयोधनम् ।
वृकोदरस्तदालोक्य नेत्रे चोत्फाल्य लोहिते ॥ ५७ ॥

एतत्समीक्ष्यात्मनि चावमानं
नियम्य मन्युं बलवान्स मानी ।
राजानुजः संसदि कौरवाणां
विनिष्क्रमन्वाक्यमुवाच भीमः ॥ ५८ ॥

अहं दुर्योधनं हन्ता कर्णं हन्ता धनञ्जयः ।
शकुनिं चाक्षकितवं सहदेवो हनिष्यति ॥ ५९ ॥
इदं च भूयो वक्ष्यामि सभामध्ये बृहद्वचः ।
सत्यं देवाः करिष्यन्ति यन्नो युद्धं भविष्यति ॥ ६० ॥
सुयोधनमिमं पापं हन्ताऽस्मि गदया युधि ।
शिरः पादेन चास्याहमधिष्ठास्यामि भूतले ॥ ६१ ॥
वक्षः शूरस्य निर्वास्य परुषस्य दुरात्मनः ।
दुश्शासनस्य रुधिरं पास्यामि मृगराडिव ॥ ६२ ॥

अर्जुन उवाच—

भीमसेन न ते सन्ति येषां वैरं त्वया सह ।
मन्दा गृहेषु सुखिनो न बुद्ध्यन्ते महद्भयम् ॥ ६३ ॥
नैव वाचा व्यवसितं भीम विज्ञायते सताम् ।

यदि स्थास्यन्ति सङ्ग्रामे क्षत्रधर्मेण वै सह ॥ ६४ ॥
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः ।
दुश्शासनचतुर्थानां भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ६५ ॥
असूयितारं वक्तारं प्रहृष्टानां दुरात्मनाम् ।
भीमसेन नियोगात्ते हन्ताऽहं कर्णमाहवे ॥ ६६ ॥
कर्णं कर्णानुगांश्चैव रणे हन्ताऽस्मि पत्रिभिः ।
ये चान्ये विप्रयोत्स्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ।
तान्स्म सर्वाञ्छितैर्बाणैर्नेताऽस्मि यमसादनम् ॥ ६७ ॥
चलेद्धि हिमवान्स्थानान्निष्प्रभः स्याद्दिवाकरः ।
शैत्यं सोमात्प्रणश्येत मत्सत्यं विचलेद्यदि ॥ ६८ ॥

वैशंपायन उवाच—

इत्युक्तवति पार्थे तु श्रीमान्माद्रवतीसुतः ।
प्रगृह्य विपुलं बाहुं सहदेवः प्रतापवान् ॥ ६९ ॥
सौबलस्य वधप्रेप्सुरिदं वचनमब्रवीत् ।
क्रोधसंरक्तनयनो निश्वस्य च मुहुर्मुहुः ॥ ७० ॥

सहदेव उवाच—

यानक्षान्मन्यसे मूढ गान्धाराणां यशोहर ।
नैते ह्यक्षाः शिता बाणास्त्वयैते समरे धृताः ॥ ७१ ॥
यथा चैवोक्तवान्भीमस्त्वामुद्दिश्य सबान्धवम् ।
कर्ताऽहं कर्मणा चास्य कुरुकार्याणि सर्वशः ।
यदि स्थास्यसि सङ्ग्रामे क्षत्रधर्मेण सौबल ॥ ७२ ॥

वैशंपायन उवाच—

सहदेववचः श्रुत्वा नकुलोऽपि विशांपते ।
दर्शनीयतमो नृणामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७३ ॥

नकुल उवाच—

सुतेयं यज्ञसेनस्य द्यूतेऽस्मिन्धृतराष्ट्रजैः ।

गैर्वान्त्रः श्राविता रूक्षा धूर्तैर्दुर्योधनप्रियैः ॥ ७४ ॥
धार्तराष्ट्रान्सुदुर्वृत्तान्मुमूर्षून्कालचोदितान् ।
दर्शयिष्यामि भूयिष्ठमहं वैवस्वतक्षयम् ॥ ७५ ॥
उलूकं च दुरात्मानं सौबलस्य प्रियं सुतम् ।
हन्ताऽहमस्मि समरे मम शत्रुं नराधमम् ॥ ७६ ॥
निदेशाद्धर्मराजस्य द्रौपद्याः पदवीं चरन् ।
निर्धार्तराष्ट्रां पृथिवीं कर्तास्मि नचिरादिव ॥ ७७ ॥

द्रौपद्युवाच—

यस्माच्चोरुं दर्शयसे यस्माच्चोरुं निरीक्षसे ।
तस्मात्तव ह्यधर्मिष्ठ ऊरौ मृत्युर्भविष्यति ॥ ७८ ॥
यस्माच्चैवं क्लेशयति भ्राता ते मां दुरात्मवान् ।
तस्मादुधिरमेवास्य पास्यते वै वृकोदरः ॥ ७९ ॥
इमं च पापिष्ठमतिं कर्णं ससुतबान्धवम् ।
सामात्यं सपरिवारं हनिष्यति धनञ्जयः ॥ ८० ॥
क्षुद्रधर्मं नैकृतिकं शकुनिं पापचेतसम् ।
सहदेवो रणे क्रुद्धो हनिष्यति सबान्धवम् ॥ ८१ ॥

वैशंपायन उवाच—

एवमुक्ते तु वचने द्रौपद्या धर्मशीलया ।
ततोऽन्तरिक्षात्सुमहत्पुष्पवर्षमवापतत् ॥ ८२ ॥
तेषां तु वचनं श्रुत्वा नोचुस्तत्र सभासदः ।
अर्जुनस्य भयाद्राजन्नभून्निश्शब्दमत्र वै ॥ ८३ ॥

सावित्र्युपाख्यानम् ।

आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा राजा परमधार्मिकः ।
ब्रह्मण्यश्च महात्मा च सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥ १ ॥

यज्वा दानपतिर्दक्षः पौरजानपदप्रियः ।
पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम सर्वभूतहिते रतः ॥ २ ॥
क्षमावाननपत्यश्च सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ।
अतिक्रान्तेन वयसा संतापमुपजग्मिवान् ॥ ३ ॥
अपत्योत्पादनार्थं च तीव्रं नियममास्थितः ।
काले परिमिताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥
हुत्वा शतसहस्रं स सावित्र्या राजसत्तम ।
षष्ठे षष्ठे तदा काले बभूव मितभोजनः ॥ ५ ॥
एतेन नियमेनासीद्वर्षाण्यष्टादशैव तु ।
पूर्णे त्वष्टादशे वर्षे सावित्री तुष्टिमभ्यगात् ॥ ६ ॥
रूपिणी तु तदा राजन्दर्शयामास तं नृपम् ।
अग्निहोत्रात्समुत्थाय हर्षेण महताऽन्विता ॥ ७ ॥
उवाच चैनं वरदावचनं पार्थिवं तदा ।
सा तमश्वपतिं राजन्सावित्री नियमे स्थितम् ॥ ८ ॥
वरं वृणीष्वाश्वपते मद्रराज यदीप्सितम् ।
न प्रमादश्च धर्मेषु कर्तव्यस्ते कथंचन ॥ ९ ॥

अश्वपतिरुवाच—

तुष्टाऽसि यदि मे देवि वरमेतं वृणोम्यहम् ।
संतानं परमो धर्म इत्याहुर्मां द्विजातयः ॥ १० ॥

सावित्र्युवाच—

पूर्वमेव मया राजन्नभिप्रायमिमं तव ।
ज्ञात्वा पुत्रार्थमुक्तो वै भगवांस्ते पितामहः ॥ ११ ॥
प्रसादाच्चैव तस्मात्ते स्वयंभू विहिताद्भुवि ।
कन्या तेजस्विनी सौम्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ १२ ॥
प्राप्ते काले तु सुषुवे कन्यां तद्राजमहिषी ।
क्रियाश्च तस्या मुदितश्चक्रे च नृपसत्तमः ॥ १३ ॥

सावित्र्या प्रीतया दत्ता सावित्र्या हुतया ह्यपि ।
सावित्रीत्येव नामास्याश्चक्रुर्विप्रास्तथा पिता ॥ १४ ॥
सा विग्रहवतीव श्रीर्व्यवर्धत नृपात्मजा ।
कालेन चापि सा कन्या यौवनस्था बभूवह ॥ १५ ॥
यौवनस्थां तु तां दृष्ट्वा स्वां सुतां देवरूपिणीम् ।
अयाच्यमानां च वरैर्नृपतिर्दुःखितोऽभवत् ॥ १६ ॥

राजोवाच—

पुत्रि प्रदानकालस्ते न च कश्चिद्वृणोति माम् ।
स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥ १७ ॥
प्रार्थितः पुरुषो यश्च स निवेद्यस्त्वया मम ।
विमृश्याहं प्रदास्यामि वरय त्वं यथेप्सितम् ॥ १८ ॥
एवमुक्त्वा दुहितरं तथा वृद्धांश्च मन्त्रिणः ।
व्यादिदेशानुयात्रं च गम्यतां चेत्यचोदयत् ॥ १९ ॥
साऽभिवाद्य पितुः पादौ व्रीडितेव तपस्विनी ।
पितुर्वचनमाज्ञाय निर्जगामाविचारितम् ॥ २० ॥
मान्यानां तत्र वृद्धानां कृत्वा पादाभिवादनम् ।
वनानि क्रमशस्तात सर्वाण्येवाभ्यगच्छत ॥ २१ ॥
एवं तीर्थेषु सर्वेषु धनोत्सर्गं नृपात्मजा ।
कुर्वती द्विजमुख्यानां तं तं देशं जगाम ह ॥ २२ ॥
ततोऽभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रमांस्तथा ।
आजगाम पितुर्वेश्म सावित्री सह मन्त्रिभिः ॥ २३ ॥
नारदेन सहासीनं सा दृष्ट्वा पितरं शुभा ।
उभयोरेव शिरसा चक्रे पादाभिवादनम् ॥ २४ ॥

नारद उवाच—

क्व गताऽभूत्सुतेयं ते कुतश्चैवागता नृप ।
किमर्थं युवतीं भर्त्रे न चैनां संप्रयच्छसि ॥ २५ ॥

अश्वपतिरुवाच—

कार्येण खल्वनेनैव प्रेषिताद्यैव चागता ।
एतस्याः शृणु देवर्षे भर्तारं योऽनयावृतः ॥ २६ ॥

सावित्र्युवाच—

आसीच्छाल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः ।
द्युमत्सेन इति ख्यातः पश्चाच्चान्धोबभूव ह ॥ २७ ॥
विनष्टचक्षुषस्तस्य बालपुत्रस्य धीमतः ।
सामीप्येन हृतं राज्यं छिद्रेऽस्मिन्पूर्ववैरिणा ॥ २८ ॥
स बालवत्सया सार्धं भार्यया प्रस्थितो वनम् ।
महारण्यं गतश्चापि तपस्तेपे महाव्रतः ॥ २६ ॥
तस्य पुत्रः पुरे जातः संवृद्धश्च तपोवने ।
सत्यवाननुरूपो मे भर्तेति मनसा वृतः ॥ ३० ॥

नारद उवाच—

अहो बत महत्पापं सावित्र्या नृपते कृतम् ।
अजानन्त्या यदनया गुणवान्सत्यवान्वृतः ॥ ३१ ॥
सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते ।
तथाऽस्य ब्राह्मणाश्चक्रुर्नामैतत्सत्यवानिति ॥ ३२ ॥

राजोवाच—

अपीदानीं स तेजस्वी बुद्धिमान्वा नृपात्मजः ।
क्षमावानपि वा शूरः सत्यवान्पितृवत्सलः ॥ ३३ ॥

नारद उवाच—

विवस्वानिव तेजस्वी बृहस्पतिसमोमतौ ।
महेन्द्र इव वीरश्च वसुधेव क्षमान्वितः ॥ ३४ ॥

राजोवाच—

अपि राजात्मजो दाता ब्रह्मण्यश्चापि सत्यवान् ।
रूपवानप्युदारो वाऽप्यथवा प्रियदर्शनः ॥ ३५ ॥

नारद उवाच—

सांकृते रन्तिदेवस्य स्वशक्त्या दानतः समः।
ब्रह्मण्यः सत्यवादी च शिविरौशीनरो यथा ॥ ३६ ॥
ययातिरिव चोदारः सोमवत्प्रियदर्शनः।
रूपेणान्यतमोऽश्विभ्यां द्युमत्सेनसुतो बली ॥ ३७ ॥
स वदान्यः स तेजस्वी धीमांश्चैव क्षमान्वितः।
स दान्तः स मृदुः शूरः ससत्यः संयतेन्द्रियः ॥
सन्मैत्रः सोनसूयश्च स ह्रीमान्द्युतिमांश्च सः ॥ ३८ ॥

राजोवाच—

गुणैरुपेतं सर्वैस्तं भगवन्प्रब्रवीषि मे।
दोषानप्यस्य मे ब्रूहि यदि सन्तीह केचन ॥ ३९ ॥

नारद उवाच—

एक एवास्य दोषो हि गुणानाक्रम्य तिष्ठति।
स च दोषः प्रयत्नेन न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ ४० ॥
एको दोषोऽस्ति नान्योऽस्य सोऽद्यप्रभृति सत्यवान्।
संवत्सरेण क्षीणायुर्देहन्यासं करिष्यति ॥ ४१ ॥

राजोवाच—

एहि सावित्रि गच्छस्व अन्यं वरय शोभने।
तस्य दोषो महानेको गुणानाक्रम्य च स्थितः ॥ ४२ ॥
यथा मे भगवानाह नारदो देवसत्कृतः।
संवत्सरेण सोऽल्पायुर्देहन्यासं करिष्यति ॥ ४३ ॥

सावित्र्युवाच—

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥ ४४ ॥
दीर्घायुरथवाऽल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥ ४५ ॥

नारद उवाच—

स्थिरा बुद्धिर्नरश्रेष्ठ सावित्र्या दुहितुस्तव ।
नैषा वारयितुं शक्या धर्मादस्मात्कथंचन ॥ ४६ ॥
नान्यस्मिन्पुरुषे सन्ति ये सत्यवति वै गुणाः ।
प्रदानमेव तस्मान्मे रोचते दुहितुस्तव ॥ ४७ ॥

राजोवाच—

अविचाल्यमेतदुक्तं तथ्यं च भवता वचः ।
करिष्याम्येतदेवं च गुरुर्हि भगवान्मम ॥ ४८ ॥

नारद उवाच—

अविघ्नमस्तु सावित्र्याः प्रदाने दुहितुस्तव ।
साधयिष्याम्यहं तावत्सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥ ४९ ॥
एवमुक्त्वा खमुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं गतः ।
राजाऽपि दुहितुः सज्जं वैवाहिकमकारयत् ॥ ५० ॥
अथ कन्याप्रदाने स तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
समानिन्ये च तत्सर्वं भाण्डं वैवाहिकं नृपः ॥ ५१ ॥
ततो वृद्धान्द्विजान्सर्वानृत्विक्सभ्यपुरोहितान् ।
समाहूय दिने पुण्ये प्रययौ सह कन्यया ॥ ५२ ॥
मेध्यारण्यं स गत्वा च द्युमत्सेनाश्रमं नृपः ।
पद्भ्यामेव द्विजैः सार्धं राजर्षिस्तमुपागमत् ॥ ५३ ॥
स राजा तस्य राजर्षेः कृत्वा पूजां यथाऽर्हतः ।
वाचा सुनियतो भूत्वा चकारात्मनिवेदनम् ॥ ५४ ॥
सावित्री नाम राजर्षे कन्येयं मम शोभना ।
तां स्वधर्मेण धर्मज्ञ स्नुषार्थे त्वं गृहाण मे ॥ ५५ ॥

द्युमत्सेन उवाच—

च्युताः स्म राज्याद्वनवासमाश्रिता-
श्चराम धर्मं नियतास्तपस्विनः ।

कथं त्वनर्हा वनवासमाश्रमे
सहिष्यति क्लेशमिमं सुता तव ॥ ५६ ॥

अश्वपतिरुवाच—

सुखं च दुःखं च भवाभवात्मकं
यदा विजानाति सुताऽहमेव च ।
न मद्विधे युज्यति वाक्यमीदृशं
विनिश्चयेनाभिगतोस्मि ते नृप ॥ ५७ ॥
आशां नार्हसि मे हन्तुं सौहृदात्प्रणतस्य च ।
अभितश्चागतं प्रेम्णा प्रत्याख्यातुं न माऽर्हसि ॥ ५८ ॥
अनुरूपो हि युक्तश्च त्वं ममाहं तवापि च ।
स्नुषां प्रतीच्छ मे कन्यां भार्यां सत्यवतस्ततः ॥ ५९ ॥

द्युमत्सेन उवाच—

पूर्वमेवाभिलषितः संबन्धो मे त्वया सह ।
भ्रष्टराज्यस्त्वहमिति तत एतद्विचारितम् ॥ ६० ॥
अभिप्रायस्त्वयं यो मे पूर्वमेवाभिकाङ्क्षितः ।
स निर्वर्ततु मेऽद्यैव काङ्क्षितो ह्यसि मेऽतिथिः ॥ ६१ ॥
ततः सर्वान्समानाय्य द्विजानाश्रमवासिनः ।
यथाविधिसमुद्वाहं कारयामासतुर्नृपौ ॥ ६२ ॥
दत्त्वा सोऽश्वपतिः कन्यां यथार्हं सपरिच्छदम् ।
ययौ स्वमेव भवनं युक्तः परमया मुदा ॥ ६३ ॥
सत्यवानपि तां भार्यां लब्ध्वा सर्वगुणान्विताम् ।
मुमुदे सा च तं लब्ध्वा भर्तारं मनसेप्सितम् ॥ ६४ ॥
गते पितरि सर्वाणि संन्यस्याभरणानि सा ।
जगृहे वल्कलान्येव वस्त्रं काषायमेव च ॥ ६५ ॥
परिचारैर्गुणैश्चैव प्रश्रयेण दमेन च ।
सर्वकामक्रियाभिश्च सर्वेषां तुष्टिमादधे ॥ ६६ ॥

एवं तत्राश्रमे तेषां तदा निवसतां सताम् ।
कालस्तपस्यतां कश्चिदपाक्रामत भारत ॥ ६७ ॥
सावित्र्या ग्लायमानायास्तिष्ठन्त्यास्तु दिवानिशम् ।
नारदेन यदुक्तं तद्वाक्यं मनसि वर्तते ॥ ६८ ॥
ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रान्ते कदाचन ।
प्राप्तः स कालो मर्तव्यं यत्र सत्यवता नृप ॥ ६९ ॥
गणयन्त्याश्च सावित्र्या दिवसे दिवसे गते ।
यद्वाक्यं नारदेनोक्तं वर्तते हृदि नित्यशः ॥ ७० ॥
चतुर्थेऽहनि मर्तव्यमिति संचिन्त्य भामिनी ।
व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं स्थिताऽभवत् ॥ ७१ ॥
त्रयोदश्यां चोपवासं प्रतिपत्सु च पारणम् ।
आयुष्यं वर्धते भर्तुर्व्रतेनानेन भारत ॥ ७२ ॥
श्वोभूते भर्तृमरणे सावित्र्या भरतर्षभ ।
दुःखान्वितायास्तिष्ठन्त्याः सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत ॥ ७३ ॥
अद्य तद्दिवसं चेति हुत्वा दीप्तं हुताशनम् ।
युगमात्रोदिते सूर्ये कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः ॥ ७४ ॥
व्रतं समाप्य सावित्री स्नात्वा शुद्धा यशस्विनी ।
ततः सर्वान्द्विजान्वृद्धाञ्श्वश्रूं श्वशुरमेव च ॥
अभिवाद्यानुपूर्व्येण प्राञ्जलिर्नियता स्थिता ॥ ७५ ॥
अवैधव्याशिषस्ते तु सावित्र्यर्थे हिताः शुभाः ।
ऊचुस्तपस्विनः सर्वे तपोवननिवासिनः ॥ ७६ ॥
एवमस्त्विति सावित्री ध्यानयोगपरायणा ।
मनसा ता गिरः सर्वाः प्रत्यगृह्णात्तपस्विनी ॥ ७७ ॥
तं कालं तं मुहूर्तं च प्रतीक्षन्ती नृपात्मजा ।
यथोक्तं नारदवचश्चिन्तयन्ती सुदुःखिता ॥ ७८ ॥
ततस्तु श्वश्रूश्वशुरावूचतुस्तां नृपात्मजाम् ।

एकान्तमास्थितां वाक्यं प्रीत्या भरतसत्तम ॥ ७९ ॥

व्रतं यथोपदिष्टं तु तथा तत्पारितं त्वया ।

आहारकालः सम्प्राप्तः क्रियतां यदनन्तरम् ॥ ८० ॥

सावित्र्युवाच—

अस्तं गते मयाऽऽदित्ये भोक्तव्यं कृतकामया ।

एष मे हृदि संकल्पः समयश्च कृतो मया ॥ ८१ ॥

एवं संभाषमाणायाः सावित्र्या भोजनं प्रति ।

स्कन्धे परशुमादाय सत्यवान्प्रस्थितो वनम् ॥ ८२ ॥

सावित्री त्वाह भर्तारं नैकस्त्वं गन्तुमर्हसि ।

सह त्वया गमिष्यामि न हि त्वां हातुमुत्सहे ॥ ८३ ॥

सत्यवानुवाच—

वनं न गतपूर्वं ते दुःखः पन्थाश्च भामिनि ।

व्रतोपवासक्षामा च कथं पद्भ्यां गमिष्यसि ॥ ८४ ॥

सावित्र्युवाच—

उपवासान्न मे ग्लानिर्नास्ति चापि परिश्रमः ।

गमने च कृतोत्साहां प्रतिषेद्धुं न माऽर्हसि ॥ ८५ ॥

सत्यवानुवाच—

यदि ते गमनोत्साहः करिष्यामि तव प्रियम् ।

मम त्वामन्त्रय गुरून्न मां दोषः स्पृशेदयम् ॥ ८६ ॥

साऽभिवाद्याब्रवीच्छ्वश्रूं श्वशुरं च महाव्रता ।

अयं गच्छति मे भर्ता फलाहारो महावनम् ॥ ८७ ॥

इच्छेयमभ्यनुज्ञाता आर्यया श्वशुरेण ह ।

अनेन सह निर्गन्तुं न मेऽद्य विरहः क्षमः ॥ ८८ ॥

गुर्वग्निहोत्रार्थकृते प्रस्थितश्च सुतस्तव ।

न निवार्योऽनिवार्यः स्यादन्यथा प्रस्थितो वनम् ॥ ८९ ॥

संवत्सरः किंचिदूनो न निष्क्रान्ताऽहमाश्रमात् ।

वनं कुसुमितं द्रष्टुं परं कौतूहलं हि मे ॥ ९० ॥

द्युमत्सेन उवाच—

यदा प्रभृति सावित्री पित्रा दत्ता स्नुषा मम ।
नानयाऽभ्यर्थनायुक्तमुक्तपूर्वं स्मराम्यहम् ॥ ९१ ॥
तदेषा लभतां कामं यथाभिलषितं वधूः ।
अप्रमादश्च कर्तव्यः पुत्रि सत्यवतः पथि ॥ ९२ ॥
उभाभ्यामभ्यनुज्ञाता सा जगाम यशस्विनी ।
सह भर्त्रा हसन्तीव हृदयेन विदूयता ॥ ९३ ॥
अनुव्रजन्ती भर्तारं जगाम मृदुगामिनी ।
द्विधेव हृदयं कृत्वा तं च कालमवेक्षती ॥ ९४ ॥
अथ भार्यासहायः स फलान्यादाय वीर्यवान् ।
कठिनं पूरयामास ततः काष्ठान्यपाटयत् ॥ ९५ ॥
तस्य पाटयतः काष्ठं स्वेदो वै समजायत ।
व्यायामेन च तेनास्य जज्ञे शिरसि वेदना ॥ ९६ ॥
सोऽभिगम्य प्रियां भार्यामुवाच श्रमपीडितः ।
व्यायामेन ममानेन जाता शिरसि वेदना ॥ ९७ ॥
अङ्गानि चैव सावित्री हृदयं दूयतीव च ।
अस्वस्थमिव चात्मानं लक्षये मितभाषिणि ॥ ९८ ॥
शूलैरिव शिरो विद्धमिदं संलक्षयाम्यहम् ।
भ्रमन्तीव दिशः सर्वाश्चक्रारूढं मनो मम ।
तत्स्वप्तुमिच्छे कल्याणि न स्थातुं शक्तिरस्ति मे ॥ ९९ ॥
सा समासाद्य सावित्री भर्तारमुपगम्य च ।
उत्सङ्गेऽस्य शिरः कृत्वा निषसाद महीतले ॥ १०० ॥
ततः सा नारदवचो विमृशन्ती तपस्विनी ।
तं मुहूर्तं क्षणं वेलां दिवसं च युयोज ह ॥ १०१ ॥
हन्त प्राप्तः स कालोऽयमिति चिन्तापरा सती ।

मुहूर्तादेव चापश्यत्पुरुषं रक्तवाससम् ।
बद्धमौलिं वपुष्मन्तमादित्यसमतेजसम् ॥ १०२ ॥
श्यामावदातं रक्ताक्षं पाशहस्तं भयावहम् ।
स्थितं सत्यवतः पार्श्वे निरीक्षन्तं तमेव च ॥ १०३ ॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय भर्तुर्न्यस्य शनैः शिरः ।
कृताञ्जलिरुवाचार्ता हृदयेन प्रवेपती ॥ १०४ ॥
दैवतं त्वाऽभिजानामि वपुरेतद्ध्यमानुषम् ।
कामया ब्रूहि देवेश कस्त्वं किं च चिकीर्षसि ॥ १०५ ॥

यम उवाच—

पतिव्रताऽसि सावित्रि तथैव च तपोन्विता ।
अतस्त्वामभिभाषामि विद्धि मां त्वं शुभे यमम् ॥ १०६ ॥
अयं ते सत्यवान्भर्ता क्षीणायुः पार्थिवात्मजः ।
नेष्यामि तमहं बद्ध्वा विद्ध्येतन्मे चिकीर्षितम् ॥ १०७ ॥

सावित्र्युवाच—

श्रूयते भगवन्दूतास्तवागच्छन्ति मानवान् ।
नेतुं किल भवान्कस्मादागतोऽसि स्वयं प्रभो ॥ १०८ ॥

यम उवाच—

अयं च धर्मसंयुक्तो रूपवान्गुणसागरः ।
नार्हो मत्पुरुषैर्नेतुमतोऽस्मि स्वयमागतः ॥ १०९ ॥
ततः सत्यवतः कायात्पाशबद्धं वशंगतम् ।
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् ॥ ११० ॥
ततः समुद्धृतप्राणं गतश्वासं हतप्रभम् ।
निर्विचेष्टं शरीरं तद्बभूवाप्रियदर्शनम् ॥ १११ ॥
यमस्तु तं ततो बद्ध्वा प्रयातो दक्षिणामुखः ।
सावित्री चैव दुःखार्ता यममेवान्वगच्छत ॥ ११२ ॥
भर्तुः शरीररक्षां च विधातुं हि तपस्विनी ।

भर्तारमनुगच्छन्ती तथावस्थं सुमध्यमा ।
नियमव्रतसंसिद्धा महाभागा पतिव्रता ॥ ११३ ॥

यम उवाच—

निवर्त गच्छ सावित्रि कुरुष्वास्यौर्ध्वदेहिकम् ।
कृतं भर्तुस्त्वयाऽऽनृण्यं यावद्गम्यं गतं त्वया ॥ ११४ ॥

सावित्र्युवाच—

यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति ।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥ ११५ ॥
तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद्व्रतेन च ।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः ॥ ११६ ॥
प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः ।
मित्रतां च पुरस्कृत्य किंचिद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ११७ ॥

नानात्मवन्तस्तु वने चरन्ति
धर्मं च वासं च परिश्रमं च ।
विज्ञानतो धर्ममुदाहरन्ति
तस्मात्सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम् ॥ ११८ ॥
एकस्य धर्मेण सतां मतेन
सर्वे स्म तं मार्गमनुप्रपन्नाः ।
मा वै द्वितीयं मा तृतीयं च वाञ्छे
तस्मात्सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम् ॥ ११९ ॥

यम उवाच—

निवर्त तुष्टोऽस्मि तवानया गिरा
स्वराक्षरव्यञ्जनहेतुयुक्तया ।
वरं वृणीष्वेह विनाऽस्य जीवितं
ददानि ते सर्वमनिन्दिते वरम् ॥ १२० ॥

सावित्र्युवाच—

च्युतः स्वराज्याद्वनवासमाश्रितो
विनष्टचक्षुः श्वशुरो ममाश्रमे ।
स लब्ध चक्षुर्बलवान्भवेन्नृप-
स्तव प्रसादाज्ज्वलनार्कसंनिभः ॥ १२१ ॥

यम उवाच—

ददानि तेऽहं तमनिन्दिते वरं
यथा त्वयोक्तं भविता च तत्तथा ।
तवाध्वना ग्लानिमिवोपलक्षये
निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत् ॥ १२२ ॥

सावित्र्युवाच—

श्रमः कुतो भर्तृसमीपतो हि मे
यतो हि भर्ता मम सा गतिर्ध्रुवा ।
यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गतिः
सुरेश भूयश्च वचो निबोध मे ॥ १२३ ॥
सतां सकृत्संगतमीप्सितं परं
ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते ।
नचाफलं सत्पुरुषेण संगतं
ततः सतां संनिवसेत्समागमे ॥ १२४ ॥

यम उवाच—

मनोऽनुकूलं बुधबुद्धिवर्धनं
त्वया यदुक्तं वचनं हिताश्रयम् ।
विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवितं
वरं द्वितीयं वरयस्व भामिनि ॥ १२५ ॥

सावित्र्युवाच—

हृतं पुरा मे श्वशुरस्य धीमतः
स्वमेव राज्यं लभतां स पार्थिवः ।

जह्यात्स्वधर्मांश्च च मे गुरुर्यथा
द्वितीयमेतद्वरयामि ते वरम् ॥ १२६ ॥

यम उवाच—

स्वमेव राज्यं प्रतिपत्स्यतेऽचिरा-
न्नच स्वधर्मात्परिहास्यते नृपः ।
कृतेन कामेन मया नृपात्मजे
निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत् ॥ १२७ ॥

सावित्र्युवाच—

प्रजास्त्वयैता नियमेन संयता
नियम्य चैता नयसे निकामया
ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं
निबोध चेमां गिरमीरितां मया ॥ १२८ ॥
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥ १२९ ॥
एवं प्रायश्च लोकोऽयं मनुष्याः शक्तिपेशलाः ।
सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते ॥ १३० ॥

यम उवाच—

पिपासितस्येव भवेद्यथा पय-
स्तथा त्वया वाक्यमिदं समीरितम् ।
विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवितं
वरं वृणीष्वेह शुभे यदिच्छसि ॥ १३१ ॥

सावित्र्युवाच—

ममानपत्यः पृथिवीपतिः पिता
भवेत्पितुः पुत्रशतं तथौरसम् ।
कुलस्य संतानकरं च यद्भवेत्
तृतीयमेतद्वरयामि ते वरम् ॥ १३२ ॥

यम उवाच—

कुलस्य संतानकरं सुवर्चसं
शतं सुतानां पितुरस्तु ते शुभे ।
कृतेन कामेन नराधिपात्मजे
निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता ॥ १३३ ॥

सावित्र्युवाच—

न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ
मनो हि मे दूरतरं प्रधावति ।
अथ व्रजन्नेव गिरं समुद्यतां
मयोच्यमानां शृणु भूय एव च ॥ १३४ ॥
विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवां-
स्ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः ।
समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजा-
स्ततस्तवेहेश्वर धर्मराजता ॥ १३५ ॥
आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सु यः ।
तस्मात्सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति ॥ १३६ ॥
सौहृदात्सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते ।
तस्मात्सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः ॥ १३७ ॥

यम उवाच—

उदाहृतं ते वचनं यदङ्गने
शुभे न तादृक् त्वदृते श्रुतं मया ।
अनेन तुष्टोऽस्मि विनाऽस्य जीवितं
वरं चतुर्थं वरयस्व गच्छ च ॥ १३८ ॥

सावित्र्युवाच—

ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं
भवेदुभाभ्यामिह यत्कुलोद्वहम् ।

शतं सुतानां बलवीर्यशालिना-
मिदं चतुर्थं वरयामि ते वरम् ॥ १३९ ॥

यम उवाच—

शतं सुतानां बलवीर्यशालिनां
भविष्यति प्रीतिकरं तवाबले ।
परिश्रमस्ते न भवेन्नृपात्मजे
निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता ॥ १४० ॥

सावित्र्युवाच—

सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः
सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति ।
सतां सद्भिर्नाफलः संगमोऽस्ति
सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः ॥ १४१ ॥
सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं
सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति ।
सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राज-
न्सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः ॥ १४२ ॥
आर्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम् ।
सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ति प्रतिक्रियाः ॥ १४३ ॥
न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो
न चाप्यर्थो नश्यति नापि मानः ।
यस्मादेतन्नियतं सत्सु नित्यं
तस्मात्सन्तो रक्षितारो भवन्ति ॥ १४४ ॥

यम उवाच—

यथायथा भाषसे धर्मसंहितं
मनोऽनुकूलं सुपदं महार्थवत् ।

तथातथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा
वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते ॥ १४५ ॥

सावित्र्युवाच—
न तेऽपवर्गः सुकृताद्विना कृत-
स्तथा यथाऽन्येषु वरेषु मानद ।
वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं
यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना ॥ १४६ ॥
न कामये भर्तृविनाकृता सुखं
न कामये भर्तृविनाकृता दिवम् ।
न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं
न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम् ॥ १४७ ॥
वरातिसर्गः शतपुत्रता मम
त्वयैव दत्तो ह्रियते च मे पतिः ।
वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं
तवैव सत्यं वचनं भविष्यति ॥ १४८ ॥

तथेत्युक्त्वा तु तं पाशं मुक्त्वा वैवस्वतो यमः ।
धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदमब्रवीत् ॥ १४९ ॥
एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनन्दिनि ।
तोषितोऽहं त्वया साध्वि वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ॥ १५० ॥
अरोगस्तव नेयश्च सिद्धार्थः स भविष्यति ।
चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया सार्धमवाप्स्यति ॥ १५१ ॥
एवं तस्यै वरं दत्त्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।
निवर्तयित्वा सावित्रीं स्वमेव भवनं ययौ ॥ १५२ ॥
सावित्र्यपि यमे याते भर्तारं प्रतिलभ्य च ।
जगाम तत्र यत्रास्या भर्तुः शावं कलेवरम् ॥ १५३ ॥
साभूमौ प्रेक्ष्य भर्तारमुपसृत्योपगृह्य च ।

उत्सङ्गे शिर आरोप्य भूमावुपविवेश ह ॥ १५४ ॥
संज्ञां च स पुनर्लब्ध्वा सावित्रीमभ्यभाषत ।
प्रोष्यागत इव प्रेम्णा पुनः पुनरुदीक्ष्य वै ॥ १५५ ॥
सुचिरं बत सुप्तोऽस्मि किमर्थं नावबोधितः ।
क्व चासौ पुरुषः श्यामो योऽसौ मां संचकर्ष ह ॥ १५६ ॥

सावित्र्युवाच—

सुचिरं त्वं प्रसुप्तोसि ममाङ्के पुरुषर्षभ ।
गतः स भगवान्देवः प्रजासंयमनो यमः ॥ १५७ ॥
विश्रान्तोसि महाभाग विनिद्रश्च नृपात्मजः ।
यदि शक्यं समुत्तिष्ठ विगाढां पश्य शर्वरीम् ॥ १५८ ॥

सत्यवानुवाच—

कामये दर्शनं पित्रोर्याहि सावित्रि मा चिरम् ।
अपि नाम गुरू तौ हि पश्येऽहं म्रियमाणकौ ॥ १५९ ॥
पुरा मातुः पितुर्वाऽपि यदि पश्यामिविप्रियम् ।
न जीविष्ये वरारोहे सत्येनात्मानमालभे ॥ १६० ॥
स्वस्थोऽस्मि बलवानस्मि दिदृक्षुः पितरावुभौ ।
ब्रुवन्नेवं त्वरायुक्तः सम्प्रायादाश्रमं प्रति ॥ १६१ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु द्युमत्सेनो महाबलः ।
लब्धचक्षुः प्रसन्नायां दृष्ट्यां सर्वं ददर्श ह ॥ १६२ ॥
स सर्वानाश्रमान्गत्वा शैब्यया सह भार्यया ।
पुत्रहेतोः परामार्तिं जगाम भरतर्षभ ॥ १६३ ॥
ततो मुहूर्तात्सावित्री भर्त्रा सत्यवता सह ।
आजगामाश्रमं रात्रौ प्रहृष्टा प्रविवेश ह ॥ १६४ ॥
दृष्ट्वा चोत्पतिताः सर्वे हर्षं जग्मुश्च ते द्विजाः ।
कण्ठं माता पिता चास्य समालिङ्ग्याभ्यरोदताम् ॥ १६५ ॥
पुत्रेण संगतं त्वां तु चक्षुष्मन्तं निरीक्ष्य च ।

सर्वे वयं वै पृच्छामो वृद्धिं वै पृथिवीपते ॥ १६६ ॥
समागमेन पुत्रस्य सावित्र्या दर्शनेन च ।
चक्षुषश्चात्मनो लाभात्त्रिभिर्दिष्ट्या विवर्धसे ॥ १६७ ॥
ततो राज्ञा सहासीनाः सर्वे ते वनवासिनः ।
जातकौतूहलाः पार्थ पप्रच्छुर्नृपतेः सुतम् ॥ १६८ ॥
प्रागेव नागतं कस्मात्सभार्येण त्वया विभो ।
विरात्रे चागतं कस्मात्कोऽनुबन्धस्तवाभवत् ॥ १६९ ॥

सत्यवानुवाच—

पित्राऽहमभ्यनुज्ञातः सावित्री सहितो गतः ।
अथ मेऽभूच्छिरोदुःखं वने काष्ठानि भिन्दतः ॥ १७० ॥
सुप्तश्चाहं वेदनया चिरमित्युपलक्षये ।
तावत्कालं न च मया सुप्तपूर्वं कदाचन ॥ १७१ ॥
सर्वेषामेव भवतां संतापो मा भवेदिति ।
अतो विरात्रगमनं नान्यदस्तीह कारणम् ॥ १७२ ॥

गौतम उवाच—

अकस्माच्चक्षुषःप्राप्तिर्द्युमत्सेनस्य ते पितुः ।
नास्य त्वं कारणं वेत्सि सावित्री वक्तुमर्हति ॥ १७३ ॥

सावित्र्युवाच—

मृत्युर्मे पत्युराख्यातो नारदेन महात्मना ।
स चाद्य दिवसः प्राप्तस्ततो नैनं जहाम्यहम् ॥ १७४ ॥
सुप्तं चैनं यमः साक्षादुपागच्छत्सकिंकरः ।
स एनमनयद्बद्ध्वा दिशं पितृनिषेविताम् ॥ १७५ ॥
अस्तौषं तमहं देवं सत्येन वचसा विभुम् ।
पञ्च वै तेन मे दत्ता वराः शृणुत तान्मम ॥ १७६ ॥
चक्षुषी च स्वराज्यं च द्वौ वरौ श्वशुरस्य मे ।
लब्धं पितुः पुत्रशतं पुत्राणां चात्मनः शतम् ॥ १७७ ॥

चतुर्वर्षशतायुर्मे भर्त्ता लब्धश्च सत्यवान् ।
भर्तुर्हि जीवितार्थं तु मया चीर्णं त्विदं व्रतम् ॥ १७८ ॥
एतत्सर्वं मयाऽऽख्यातं कारणं विस्तरेण वः ।
यथावृत्तं सुखोदर्कमिदं दुःखं महन्मम ॥ १७९ ॥

ऋषय ऊचुः—

निमज्जमानं व्यसनैरभिद्रुतं
कुलं नरेन्द्रस्य तमोमये ह्रदे ।
त्वया सुशीलव्रतपुण्यया कुलं
समुद्धृतं साध्वि पुनः कुलीनया ॥ १८० ॥

ततः प्रकृतयः सर्वाः साल्वेभ्योऽभ्यागता नृपम् ।
आचख्युर्निहतं चैव स्वेनामात्येन तं द्विषम् ॥ १८१ ॥
तं मन्त्रिणा हतं प्रोच्य ससहायं सबान्धवम् ।
न्यवेदयन्यथावृत्तं विद्रुतं च द्विषाद्बलम् ॥ १८२ ॥
ततोऽभिवाद्य तान्वृद्धान्द्विजानाश्रमवासिनः ।
तैश्चाभिपूजितः सर्वैः प्रययौ नगरं प्रति ॥ १८३ ॥
ततोऽभिषिषिचुः प्रीत्या द्युमत्सेन पुरोहिताः ।
पुत्रं चास्य महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयन् ॥ १८४ ॥
ततः कालेन महता सावित्र्याः कीर्तिवर्धनम् ।
तद्वै पुत्रशतं जज्ञे शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ १८५ ॥
भ्रातॄणां सोदराणां च तथैवास्याभवच्छतम् ।
मद्राधिपस्याश्वपतेर्मालव्यां सुमहद्बलम् ॥ १८६ ॥
एवमात्मा पिता माता श्वश्रूः श्वशुर एव च ।
भर्तुः कुलं च सावित्र्या सर्वं कृच्छ्रात्समुद्धृतम् ॥ १८७ ॥
यश्चेदं शृणुयाद्भक्त्या सावित्र्याख्यानमुत्तमम् ।
स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः ॥ १८८ ॥

यक्ष-युधिष्ठिर-संवादः ।

१. यक्ष उवाच—

किंस्विदादित्यमुन्नयति के च तस्याभितश्चराः ।
कश्चैनमस्तं नयति कस्मिंश्च प्रतितिष्ठति ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

ब्रह्मादित्यमुन्नयति देवास्तस्याभितश्चराः ।
धर्मश्चास्तं नयति च सत्ये च प्रतितिष्ठति ॥ २ ॥

२. यक्ष उवाच—

केनस्विच्छ्रोत्रियो भवति केनस्विद्विन्दते महत् ।
केनस्विद्द्वितीयवान्भवति राजन्केन च बुद्धिमान् ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

श्रुतेन श्रोत्रियो भवति तपसा विन्दते महत् ।
धृत्या द्वितीयवान्भवति बुद्धिमान्वृद्धसेवया ॥ ४ ॥

३. यक्ष उवाच—

किं ब्राह्मणानां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव ।
कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

स्वाध्याय एषां देवत्वं तप एषां सतामिव ।
मरणं मानुषो भावः परिवादोऽसतामिव ॥ ६ ॥

४. यक्ष उवाच—

किं क्षत्रियाणां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव ।
कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

इष्वस्त्रमेषां देवत्वं यज्ञ एषां सतामिव ।
भयं वै मानुषो भावः परित्यागोऽसतामिव ॥ ८ ॥

५. यक्ष उवाच—

किमेकं यज्ञियं साम किमेकं यज्ञियं यजुः ।
का चैषां वृणुते यज्ञं कां यज्ञो नातिवर्तते ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

प्राणो वै यज्ञियं साम मनो वै यज्ञियं यजुः ।
ऋगेका वृणुते यज्ञं तां यज्ञो नातिवर्तते ॥ १० ॥

६. यक्ष उवाच—

किंस्विदावपतां श्रेष्ठं किंस्विन्निर्वपतां वरम् ।
किंस्वित्प्रतिष्ठमानानां किंस्वित्प्रसवतां वरम् ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

वर्षमावपतां श्रेष्ठं बीजं निर्वपतां वरम् ।
गावः प्रतिष्ठमानानां पुत्रः प्रसवतां वरः ॥ १२ ॥

७. यक्ष उवाच—

इन्द्रियार्थाननुभवन्बुद्धिमाँल्लोकपूजितः ।
संमतः सर्वभूतानामुच्छ्वसन्को न जीवति ॥ १३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥ १४ ॥

८. यक्ष उवाच—

किंस्विद्गुरुतरं भूमेः किंस्विदुच्चतरं च खात् ।
किंस्विच्छीघ्रतरं वायोः किंस्विद्बहुतरं तृणात् ॥ १५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

माता गुरुतरा भूमेः खात्पितोच्चतरस्तथा ।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात् ॥ १६ ॥

९. यक्ष उवाच—

किंस्वित्सुप्तं न निमिषति किंस्विज्जातं न चेङ्गते ।

कस्यस्विद्धृदयं नास्ति कास्विद्वेगेन वर्धते ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

मत्स्यः सुप्तो न निमिषत्यण्डं जातं न चेङ्गते ।
अश्मनो हृदयं नास्ति नदी वेगेन वर्धते ॥ १८ ॥

१०. यक्ष उवाच—

किंस्वित्प्रवसतो मित्रं किंस्विन्मित्रं गृहे सतः ।
आतुरस्य च किं मित्रं किंस्विन्मित्रं मरिष्यतः ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

विद्या प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः ।
आतुरस्य भिषङ्मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः ॥ २० ॥

११. यक्ष उवाच—

कोऽतिथिः सर्वभूतानां किंस्विद्धर्मं सनातनम् ।
अमृतं किंस्विद्राजेन्द्र किंस्वित्सर्वमिदं जगत् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

अतिथिः सर्वभूतानामग्निः सोमो गवामृतम् ।
सनातनोऽमृतो धर्मो वायुः सर्वमिदं जगत् ॥ २२ ॥

१२. यक्ष उवाच—

किंस्विदेको विचरते जातः को जायते पुनः ।
किंस्विद्धिमस्य भैषज्यं किंस्विदावपनं महत् ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

सूर्यो एको विचरते चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भैषज्यं भूमिरावपनं महत् ॥ २४ ॥

१३. यक्ष उवाच—

किंस्विदेकपदं धर्म्यं किंस्विदेकपदं यशः ।
किंस्विदेकपदं स्वर्ग्यं किंस्विदेकपदं सुखम् ॥ २५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम् ॥ २६ ॥

१४. यक्ष उवाच—

किंस्विदात्मा मनुष्यस्य किंस्विद्दैवकृतः सखा।
उपजीवनं च किंस्वित्थ किंस्विदस्य परायणम् ॥ २७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या दैवकृतः सखा।
उपजीवनं च पर्जन्यो दानमस्य परायणम् ॥ २८ ॥

१५. यक्ष उवाच—

धन्यानामुत्तमं किंस्विद्धनानां स्यात्किमुत्तमम्।
लाभानामुत्तमं किं स्यात्सुखानां स्यात्किमुत्तमम् ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम्।
लाभानां श्रेय आरोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा ॥ ३० ॥

१६. यक्ष उवाच—

किंस्विद्धर्मपरं लोके कश्च धर्मः सदाफलः।
किं नियम्य न शोचन्ति कैश्च सन्धिर्न जीर्यते ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

आनृशंस्यं परं धर्मस्त्रेताधर्मः सदाफलः।
मनो यम्य न शोचन्ति सन्धिः सद्भिर्न जीर्यते ॥ ३२ ॥

१७. यक्ष उवाच—

किं नु हित्वा प्रियो भवति किं नु हित्वा न शोचति।
किं नु हित्वाऽर्थवान्भवति किं नु हित्वा सुखी भवेत् ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति।

कामं हित्वाऽर्थवान्भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत् ॥ ३४ ॥

१८. यक्ष उवाच—

किमर्थं ब्राह्मणे दानं किमर्थं नटनर्तके ।

किमर्थं चैव भृत्येषु किमर्थं चैव राजसु ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

धर्मार्थंब्राह्मणे दानं यशोऽर्थं नटनर्तके ।

भृत्येषु संग्रहार्थं च भयार्थं चैव राजसु ॥ ३६ ॥

१९. यक्ष उवाच—

केनस्विदावृतो लोकः केनस्विन्न प्रकाशते ।

केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

अज्ञानेनावृतो लोकस्तमसा न प्रकाशते ।

लोभात्त्यजति मित्राणि सङ्गात्स्वर्गं न गच्छति ॥ ३८ ॥

२०. यक्ष उवाच—

मृतः कथं स्यात्पुरुषः कथं राष्ट्रं मृतं भवेत् ।

श्राद्धं मृतं कथं वा स्यात्कथं यज्ञो मृतो भवेत् ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम् ।

मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ॥ ४० ॥

२१. यक्ष उवाच—

का दिक्किमुदकं पार्थ किमन्नं किं च वै विषम् ।

श्राद्धस्य कालमाख्याहि ततः पिब हरस्व च ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

सन्तो दिग्जलमाकाशं गौरन्नं ब्राह्मणं विषम् ।

श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः कथं वा यक्ष मन्यसे ॥ ४२ ॥

२२. यक्ष उवाच—

तपः किं लक्षणं प्रोक्तं को दमश्च प्रकीर्तितः ।
क्षमा च का परा प्रोक्ता का च ह्रीः परिकीर्तिता ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

तपः स्वधर्मवर्तित्वं मनसो दमनं दमः ।
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं ह्रीरकार्यनिवर्तनम् ॥ ४४ ॥

२३. यक्ष उवाच—

किं ज्ञानं प्रोच्यते राजन्कः शमश्च प्रकीर्तितः ।
दया च का परा प्रोक्ता किं चार्जवमुदाहृतम् ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

ज्ञानं तत्त्वार्थसम्बोधः शमश्चित्तप्रशान्तता ।
दया सर्वसुखैषित्वमार्जवं समचित्तता ॥ ४६ ॥

२४. यक्ष उवाच—

कः शत्रुर्दुर्जयः पुंसां कश्च व्याधिरनन्तकः ।
कीदृशश्च स्मृतः साधुरसाधु कीदृशः स्मृतः ॥ ४७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तकः ।
सर्वभूतहितः साधुरसाधुर्निर्दयः स्मृतः ॥ ४८ ॥

२५. यक्ष उवाच—

को मोहः प्रोच्यते राजन्कश्च मानः प्रकीर्तितः ।
किमालस्यं विज्ञेयं कश्च शोकः प्रकीर्तितः ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

मोहो हि धर्ममूढत्वं मानस्त्वात्माभिमानिता ।
धर्मनिष्क्रियताऽऽलस्यं शोकस्त्वज्ञानमुच्यते ॥ ५० ॥

२६. यक्ष उवाच—

किं स्थैर्यमृषिभिः प्रोक्तं किं च धैर्यमुदाहृतम् ।

स्नानं च किं परं प्रोक्तं दानं च किमिहोच्यते ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्यं धैर्यमिन्द्रियनिग्रहः ।
स्नानं मनोमलत्यागो दानं वै भूतरक्षणम् ॥ ५२ ॥

२७. यक्ष उवाच—

कः पण्डितः पुमाञ्ज्ञेयो नास्तिकः कश्च उच्यते ।
को मूर्खः कश्च कामः स्यात्को मत्सर इति स्मृतः ॥ ५३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयो नास्तिको मूर्ख उच्यते ।
कामः संसारहेतुश्च हृत्तापो मत्सरः स्मृतः ॥ ५४ ॥

२८. यक्ष उवाच—

कोऽहंकार इति प्रोक्तः कश्च दम्भः प्रकीर्तितः ।
किं तद्दैवं परं प्रोक्तं किं तत्पैशुन्यमुच्यते ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

महाऽज्ञानमहंकारो दम्भो धर्मो ध्वजोच्छ्रया ।
दैवं दानफलं प्रोक्तं पैशुन्यं परदूषणम् ॥ ५६ ॥

२९. यक्ष उवाच—

धर्मश्चार्थश्च कामश्च परस्परविरोधिनः ।
एषां नित्यविरुद्धानां कथमेकत्र संगमः ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

यदा धर्मश्च भार्या च परस्परवशानुगौ ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगमः ॥ ५८ ॥

३०. यक्ष उवाच—

अक्षयो नरकः केन प्राप्यते भरतर्षभ ।
एतन्मे पृच्छतः प्रश्नं तच्छीघ्रं वक्तुमर्हसि ॥ ५९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

ब्राह्मणं स्वयमाहूय याचमानमकिंचनम् ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥
वेदेषु धर्मशास्त्रेषु मिथ्या यो वै द्विजातिषु ।
देवेषु पितृधर्मेषु सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ ६१ ॥
विद्यमाने धने लोभाद्दानभोग विवर्जितः ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ ६२ ॥

३१. यक्ष उवाच—

राजन्कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा ।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत्सुनिश्चितम् ॥ ६३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥ ६४ ॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः ।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥ ६५ ॥
पाठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान्स पण्डितः ॥ ६६ ॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ ६७ ॥

३२. यक्ष उवाच—

प्रियवचनवादी किं लभते
विमृशितकार्यकरः किं लभते ।
बहुमित्रकरः किं लभते
धर्मे रतः किं लभते कथय ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

प्रियवचनवादी प्रियो भवति
विमृशितकार्यकरोऽधिकं जयति ।

बहुमित्रकरः सुखं वसते
यश्च धर्मरतः स गतिं लभेत ॥ ६९ ॥

३३. यक्ष उवाच—
को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्थाः का च वार्तिका ।
वद मे चतुरः प्रश्नान्मृता जीवन्तु बान्धवाः ॥ ७० ॥

युधिष्ठिर उवाच—
पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वगृहे ।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥ ७१ ॥
अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥ ७२ ॥
तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ ७३ ॥
पृथ्वी विभाण्डं गगनं पिधानं
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन
भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥ ७४ ॥

३४. यक्ष उवाच—
व्याख्याता मे त्वया प्रश्ना यथातत्त्वं परंतप ।
पुरुषं त्विदानीं व्याख्याहि यः सर्वधनी नरः ॥ ७५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—
दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्येन कर्मणा ।
यावत्स शब्दो भवति तावत्पुरुष उच्यते ॥ ७६ ॥
तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च ।
अतीतानागते चोभे स वै पुरुष उच्यते ॥ ७७ ॥
समत्वं यस्य सर्वेषु निस्पृहः शान्तमानसः ।
सुप्रसन्नः सदा योगी स वै सर्वधनी नरः ॥ ७८ ॥

३५. यक्ष उवाच—

व्याख्यातः पुरुषो राजन्यश्च सर्वधनी नरः ।
तस्मात्त्वमेकं भ्रातॄणां यमिच्छसि स जीवतु ॥ ७९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

श्यामो य एष रक्ताक्षो बृहत्साल इवोत्थितः ।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्नकुलो यक्ष जीवतु ॥ ८० ॥

३६. यक्ष उवाच—

प्रियस्ते भीमसेनोऽयमर्जुनो वः परायणम् ।
त्वं कस्मान्नकुलं राजन्सापत्नं जीवमिच्छसि ॥ ८१ ॥
तस्य नागसहस्रेण दशसङ्ख्येन वै बलम् ।
तुल्यं तं भीममुत्सृज्य नकुलं जीवमिच्छसि ॥ ८२ ॥
तथैनं मनुजाः प्राहुर्भीमसेनं प्रियं तव ।
अथ केनानुभावेन सापत्नं जीवमिच्छसि ॥ ८३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ ८४ ॥
आनृशंस्यं परो धर्मः परमार्थाच्च मे मतम् ।
आनृशंस्यं चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥ ८५ ॥
धर्मशीलः सदा राजा इति मां मानवाः विदुः ।
स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥ ८६ ॥
कुन्ती चैव माद्री च द्वे भार्ये तु पितुर्मम ।
उभे सपुत्रे स्यातां वै इति मे धीयते मतिः ॥ ८७ ॥
यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयोः ।
मातृभ्यां सममिच्छामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥ ८८ ॥

३७. यक्ष उवाच—

यस्य तेऽर्थाच्च कामाच्च आनृशंस्यं परं मतम् ।
तस्मात्ते भ्रातरः सर्वे जीवन्तु भरतर्षभ ॥ ८९ ॥

शुद्धिपत्रम् ।

अशुद्धम्	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	शुद्धम्
परूषम्	2	11	परुषम्
कैकेय्या	3	5	कैकेय्याः
प्रियम०	4	11	प्रियमसि०
गन्तु	5	20	गन्तुं
वर्धनः	6	18	-वर्धन
०मवध्रातश्च	8	12	०मवघ्रातश्च
धमात्मों	8	18	धर्मात्मा
श्रत्वः	21	5	श्रतवः
मनि	21	18	मुनि
सर्वजातयाः	21	26	सर्वजातयः
तेनाहं	25	24	ते नाहं
०नादितेः	44	4	०नादिते
दुःख	44	22	दुःखं
०विध	46	3	०विधं
मनुयो	47	1	मुनयो
श्च	53	10	श्च
०मसंभवम्	55	1	ससंभवम्
०तं	56	8	०तस्तं
ना	56	18	न
०गन्नर्के	60	19	गन्नर्के
परूष०	67	10	परुष०
प्रेप्सुदर्शो०	67	25	प्रेप्सुर्देश०
मृगाल०	72	3	शृगाल०
भग्नधन्वा	80	3	भग्नधन्वा
हारा०	82	21	हार०
सिद्धा०	84	23	सिद्धा०
अनायासाद०	95	2	अनासाद०
काकुतस्थ	95	14	काकुत्स्थ
यश कामो	110	21	यशः कामो
अष्टानज्ञात	111	23	अष्टा न ज्ञातं
विमनाभासिका	112	3	विमना भासिका
समासो	115	18	स मासो
चिन्त्यया नम०	116	10	चिन्तयानम०
जिह्वाग्र	117	23	जिह्वाग्रं
मन्यते	119	3	उच्यते
विदुषः	119	19	विदुषा
०व्रत	120	13	व्रतं
निश्चस्यो०	123	15	निःश्वस्यो०
विश्वामित्र	125	11	विश्वामित्रे
या मे	125	14	यामे
नान्याः	127	3	नान्यः
०शोच यत्	130	23	शोचयत्
च्छूम	130	21	च्छून
०प्या०	131	12	०सर्वा०
लज्जाते	132	20	लज्जा ते
शरीरजः०	135	24	शरीररजः ०
स्वाङ्क०	135	26	०स्तवाङ्क०
क्रोटे०	136	2	कीटे०
कृश्य	137	10	कृष्य
परूषया	137	11	परुषया
पुण्य प्रदा	138	2	पुण्यप्रदा
सिद्धैं०	138	17	सिद्धै०
वेष्मनि	139	26	वेश्मनि
खङ्ग०	139	1,2 8	खड्ग०
०म्हं	147	8	म्यहं
०पारगाः	149	5	पारगः
०चितम्	149	13	चिंतम्
प्रतीच्स्व	151	21	प्रतीच्छस्व
०र्षश्च	152	2	०र्षश्च
काष्यपस्य	158	10	काश्यपस्य
साङ्गेवर शारद्वत०	158	11	साङ्गेवर-शारद्वत०
विस्मृत्तिं	159	23	विस्मृतिं
०मेहा	160	6	०महा
कारण०	164	18	कारणा०

अशुद्धम्	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	शुद्धम्
॰ममि	164	25	॰मपि
मात्याक्षीः	168	2	मा त्याक्षीः
स्वमेव	168	26	स्वयमेव
गृहीष्यसि	168	26	ग्रहीष्यसि
दाशेदं	170	2	दाशेरं
श्री रूपिणी	171	16	श्रीरूपिणी
निराकृतं	171	23	निराकृता
पूरत:	172	18	पूरिता:
कात:	174	3	कति
तु	179	5	नु
॰तैथ॰	183	26	॰तथै॰
॰मादध्वं	192	2	॰माददध्वं
स्यंवरे	192	18	स्वयंवरे
प्रश्नं	194	16	प्रश्न
॰ल्यस्य	197	5	॰लस्य
मन्त्य‌न्ति	198	17	मन्त्रयन्ति
॰कृत	207	24	कृत्
॰स्त्व	208	5	स्तव
॰मम्	208	8	मम
॰पुरुषेन	215	18	॰पुरुषेण
संनि॰	215	19	सन्नि॰
महाद्	222	21	महद्
विज्ञेयं	228	21	विज्ञेयं च
पाठका:	230	15	पठकाः
य:	231	21	यश्च
चैव	232	21	चैव तु

———